
चन्दामामा
माँ-बच्चों का
6



मगधराज के जमाने में बोधिसत्व कोशाध्यक्ष के रूप में काम किया करते थे। उनके पास अस्सी करोड़ अशर्फियाँ थीं।

काशी राज्य में श्रीवत्स नामक एक धनी रहा करता था। उसके पास अस्सी करोड़ से भी अधिक अशर्फियाँ थीं। इसलिए उसको भी करोडपति कहा जाता था। श्रीवत्स और बोधिसत्व दिली दोस्त थे। चाहे कोई कितना बड़ा हो, सब का समय एक जैसा नहीं होता। करोड़पति श्रीवत्स के भी बुरे दिन आये। वह अपना सारा वैभव-ऐश्वर्य खो बैठा। आखिर वह बोधिसत्व की मदद की आस बाँधे बैठा रहा। वह और उसकी पत्नी बोधिसत्व के पास पैदल गए।

बोधिसत्व ने आते ही उसको गले लगा लिया। श्रीवत्स ने कहा- "बोधिसत्व! मैं अब भिखारी हो गया हूँ। मेरी इस हालत में तू ही अकेला मदद कर सकता है। इसीलिये मैं तेरे पास आया हूँ।"

"इसमें क्या बात है ! जो तुम्हें करना चाहिये था वही तुमने किया, श्रीवत्स।" कहते हुए बोधिसत्व ने तिजोरी खोल कर चालीस करोड़ अशर्फी अपने मित्र को दे दी। उसने अपनी जमीन-जायदाद के दो हिस्से किये और एक हिस्सा श्रीवत्स को दे दिया। अपने नौकर चाकर भी बाँट दिये।

फिर, थोड़े दिनों बाद, बोधिसत्व की भी हालत गिरी; उन्हें भी दारिद्र्य सताने लगा। वे भी यह सोच कर कि उनकी मदद करनेवाला सिवाय श्रीवत्स के कोई नहीं है, पत्नी के साथ काशी राज्य के लिये रवाना हुये। जैसे-तैसे, मुसीबतें सहते वे काशी राज्य पहुँचे। शहर के बाहर ही अपनी

पत्नी को, एक पेड़ के छाया में खड़ा कर, बोधिसत्व ने कहा-"तुम यही ठहरो। श्रीवत्स से मिल कर मैं तुम्हारे लिये गाड़ी और नौकर भिजवा दूँगा।" बोधिसत्व शहर के अन्दर चला गया।

बोधिसत्व ने अपने मित्र के पास खबर पहुँचबाई कि फलाना करोड़पति आया हुआ है।

"अच्छा, तो जाओ उन्हे अन्दर बुलाओ।" श्रीवत्स ने कहा। पर उसने बोधिसत्व की आवभगत न की। "क्या काम है ?" सिर्फ एक ही प्रश्न पूछा।

"आपके दर्शन के लिए...." बोधिसत्व के कहा।

"कहाँ ठहरे हुए हो ?" श्रीवत्स ने पूछा।

"कहीं भी नहीं। अपनी पत्नी को शहर के बाहर छोड़ कर, मैं आपके दर्शन के लिए यहाँ चला आया हूँ।"

"यहाँ ठहरने का इन्तजाम नहीं किया जा सकता। थोड़े से चावल दिलवाता हूँ- जाओ, ले जाओ, पका कर खाओ।" श्रीवत्स ने सख्ती से कहा।

तुरन्त एक नौकर ने बोधिसत्व को चावल दे दिये। चावल ले कर वे पत्नी के पास गये।



"क्या लाये ?" स्त्री ने पूछा।

"मित्र श्रीवत्स ने थोड़े से चावल देकर हमारा पीछा छुड़वा लिया है।" बोधिसत्व ने कहा।

"आप ने इन्हे क्यों लिया? जो हमने उसे चालीस करोड़ अशर्फियाँ दी थीं, क्या उसी का यह बदला है ?" पत्नी ने पूछा।

बोधिसत्व ने कहा-"चाहे कुछ भी हो, मैत्री नहीं टूटनी चाहिये। इसलिए ही मैंने ये चावल ले लिए थे।"

इस बीच एक नौकर उस राह पर आया। वह नौकर उन लोगों में से था

जिनको बोधिसत्व ने कुछ दिन पहले श्रीवत्स को दिया था। उसने अपने पहिले मालिक और उनकी पत्नी का पहचान लिया। उनके पैरों पर पड़ गया। "क्यों महाराज ! आपका इस तरफ कैसे आना हुआ ?" उसने उनसे बडी उत्सुकता से पूछा। बोधिसत्व ने सारी की सारी बात सुना दी।

"कैसी भी गुजरे, घबराईये मत महाराज !" यह कहता हुआ उनको वह अपने घर ले गया और उनका बहुत आदर-सत्कार किया। सब नौकरों को जाकर बता दिया कि "मालिक आए हुए हैं।"

यह खबर मालूम कर, काशीराज ने बोधिसत्व और उनकी पत्नी को दरबार में बुलवाया और उनसे पूछा-"क्या यह सच है कि तुमने श्रीवत्स को चालीस करोड़ अशर्फियाँ दी थी?" बिना कुछ छुपाए, जो कुछ गुजरा था, बोधिसत्व ने साफ साफकह दिया। तब काशीराज ने श्रीवत्स को बुला कर गुस्से में पूछा-"क्या यह ठीक है?"

"जी हाँ।" श्रीवत्स ने कहा।

"फिर तूने उस मित्र से जिसने तेरा उपकार किया ऐसा क्यों व्यवहार किया ?" राजा ने पूछा।

श्रीवत्स चुप रहा। कोई जवाब न दिया। तब राजा ने अपने मन्त्रियों से सलाह मशवरा करके यह फैसला दिया कि श्रीवत्स अपनी सारी सम्पति बोधिसत्व को दे।

तब बोधिसत्व ने कहा-"महाराज ! में दूसरों की सम्पत्ति में से एक तिनका भी लेना नहीं चाहता। यह काफी है कि मेरा दिया हुआ धन मुझे वापस कर दिया जाय।"

यह सुन कर राजा ने बोधिसत्व की इच्छा के अनुसार अपने फैसले को बदल दिया।





शेर का मन्त्र

पहले किसी गाँव में सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण रहा करता था। उसमें यह इच्छा पैदा हुई कि वह एक ऐसा मन्त्र सीख ले, जिससे मनुष्य को शेर बनाया जा सके। परन्तु उसको मन्त्र सिखाने के लिए कोई नहीं दिखाई दिया।

एक रोज सोमशर्मा को मालूम हुआ कि कोई सन्यासी जो मन्त्र-तन्त्र के ज्ञान के लिए मशहूर था, पासवाले मठ में ठहरा हुआ था। सोमशर्मा ने इसे अपना सौभाग्य समझा। वह अपनी पत्नी के साथ उन्हें न्योता देने के लिए मठ गया। सन्यासी की अच्छी आवभगत की ।

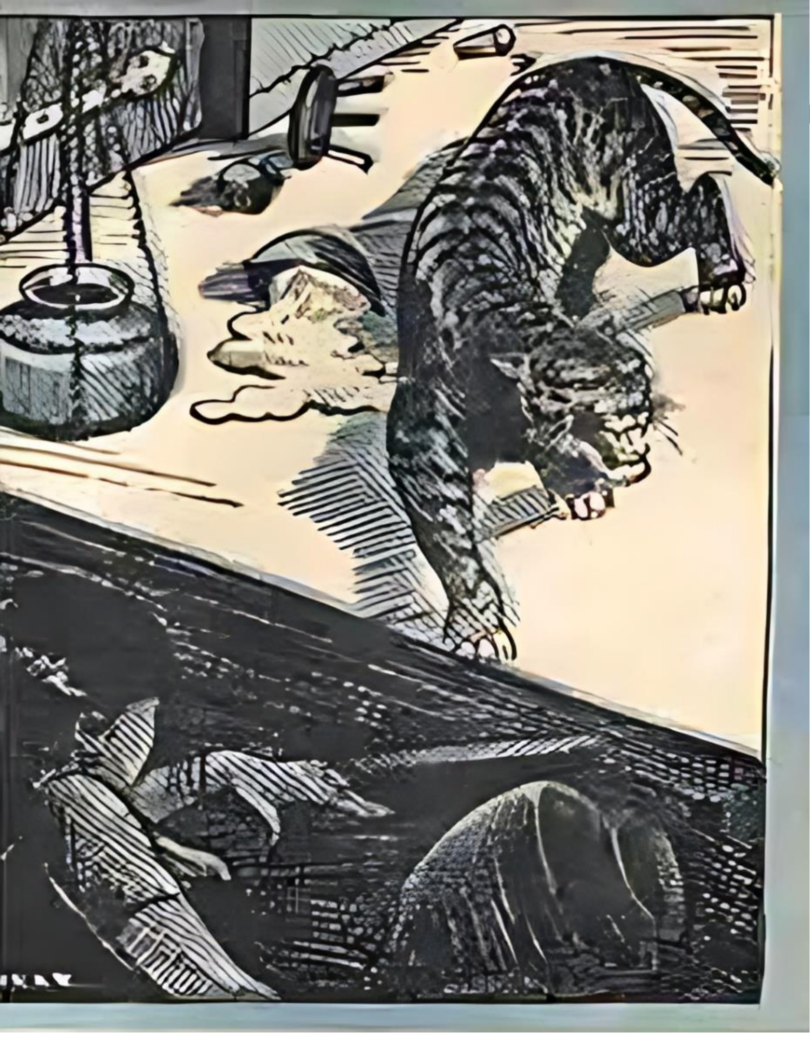
भोजन के बाद, जब सन्यासी आराम से बैठे सुस्ता रहे थे, सोमशर्मा ने उनके पास जा इधर उधर की बातें कीं और फिर अपनी इच्छा प्रकट की।

"शेर वाला मन्त्र बहुत ही खतरनाक है। इसलिए उसको हम लोगों के सामने नहीं पढ़ते हैं।" सन्यासी ने कहा। पर शर्मा ने सन्यासी को छोड़ा नहीं।

आखिर सन्यासी ने कहा-"अरे शर्मा ! अच्छा भाई- मैं तुझे शेरवाला मन्त्र सिखाऊँगा। परन्तु वह विनोद आदि के लिए ही काम आयेगा। यानी अगर किसी ने शेर होना चाहा तमी तुम उसे शेर बना पाओगे, वरना नहीं।"

बाद में........

सन्यासी ने शर्मा को दो मन्त्र सिखाये। दो प्रकार के चावल हाथ में दिए। "शर्मा। अगर पहले मन्त्र को पढ़ कर ये लाल चावल फेंकोगे तो कोई भी आदमी शेर के रूप में बदल जायेगा। उस शेर के चेहरे पर एक चिह्न स्पष्ट दिखाई देगा, जो इसका पता



देगा कि तुमने उसे शेर के रूप में बदला है। जब तेरा शौक खतम हो तब दूसरा मन्त्र पढ़ो, और शेर के मुँह के चिह्न पर पीले चावल फेंको, वह फिर मामूली आदमी में बदल जायेगा। परन्तु तुम्हे एक जरूरी बात का ख़याल रखना होगा। इस मन्त्र के द्वारा जब मनुष्य शेर बन जायेगा तब उसे मनुष्य का ज्ञान न रहेगा। इसलिए तुम सावधान रहो।" सन्यासी के चले जाने के बाद शर्मा ने पत्नी से यह बात कही। उसकी पत्नी ने कभी शेर न देखा था। इसलिए उसने शेर दिखने के लिए जिद की। इसके अलावा, शर्मा भी यह जानना चाहता था कि मन्त्र काम करता है कि नहीं।

तब उसने अपनी पत्नी से कहा- "देखो ! अगर मैं किसी से कहता हूँ कि मैं उसे शेर बनाऊँगा तो कोई मानेगा नहीं; और मैं उसकी इच्छा के बगैर उसे शेर नहीं बना सकता। इसलिए मैं तुझे वे मन्त्र सिखाता हूँ, तू मुझे शेर बना देना। जब तू शेर को देख ले और तेरी इच्छा पूरी हो जाय मुझे फिर मनुष्य बना देना।" उसने अपनी पत्नी को दोनों मन्त्र सिखा दिये। उनको उपयोग में लाने तरीका भी समझाया। चावल हाथ में दे दिये।

अगर वह शेर बन गया और न जाने पत्नी को क्या-क्या हानी पहुँचायें। यह सोच कर उसने पत्नी को कोठे पर चढ़ा दिया और सब दरवाजे बन्द कर दिये। तब वह कोठे के नीचे जाकर बैठ गया।

उसकी पत्नी ने उत्सुकता के मारे मन्त्र पढ़ा; चावल फेंके और पति को शेर के रूप में बदल दिया। शर्मा ज्यों ही शेर बना त्यों ही भयङ्कर रूप से गरजने चिंघाड़ने लगा। बाहर जाने का रास्ता न था, दरवाजों को तोड़ना शुरू कर दिया।

शर्मा को शेर के रूप में देख कर उसकी पत्नी डर से काँप उठी और डर के मारे वह दूसरा मन्त्र भूल गई। उसने दो-तीन बार शेर के मुँह पर चावल फेंके, पर कोई असर न हुआ।

थोड़े समय बाद शेर ने जैसे-तैसे किवाड़ तोड़ फेंके और गाँव के पास वाले जङ्गल में चला गया। शेर के भाग जाने के बाद शर्मा की पत्नी के जान में जान आई। कोशिश करने पर उसे दूसरा मन्त्र भी याद आ गया, पर क्या फायदा !

अपनी मूर्खता पर उसे बड़ा दुःख हुआ। वह बुरी तरह पछताने लगी। दो महीनों बाद उसका छोटा भाई उसके घर आया। उसको साथ लेकर, अपने पति को खोजने लगी।

खैर ! इस बीच में......

राजा के पास जाकर लोगों ने अर्ज किया कि कोई निशानवाला नया शेर उनके राज्य के गाँव बस्तियों पर हमला कर रहा है। राजा ने उनको आश्वासन दिलाया और स्वयं नौकर-चाकरों के साथ शेर को मारने के लिए जङ्गल की ओर चल पड़ा। बहुत खोजने पर भी वह निशानवाला शेर न दिखाई दिया। रजा निराश हो एक वृक्ष के नीचे



विश्राम लेने के लिए चला। इतने में उन्हें पीछे से एक गर्जन सुनाई दिया। देखता क्या है कि वह निशानवाला शेर ही है। पञ्जे उठा कर वह खड़ा था। राजा के डर के मारे होश उड़ गये।

परन्तु वे अभी आश्चर्य और भय से देख ही रहे थे कि वह शेर ब्राह्मण के रूप में बदल गया। वह सोमशर्मा ही था। एक हाथ ऊपर उठा कर और दूसरे हाथ से वह राजा का गला घोंट रहा था।

शर्मा को यह न मालूम था कि शेर के रूप में बदल जाने के बाद उसने क्या-क्या

किया। यकायक उस जङ्गल में फिर मनुष्य बन जाने पर उसे समझ में नहीं आया कि वह उस जङ्गल में क्यों आया और उस तरह राजा का गला क्यों घोंट रहा है !

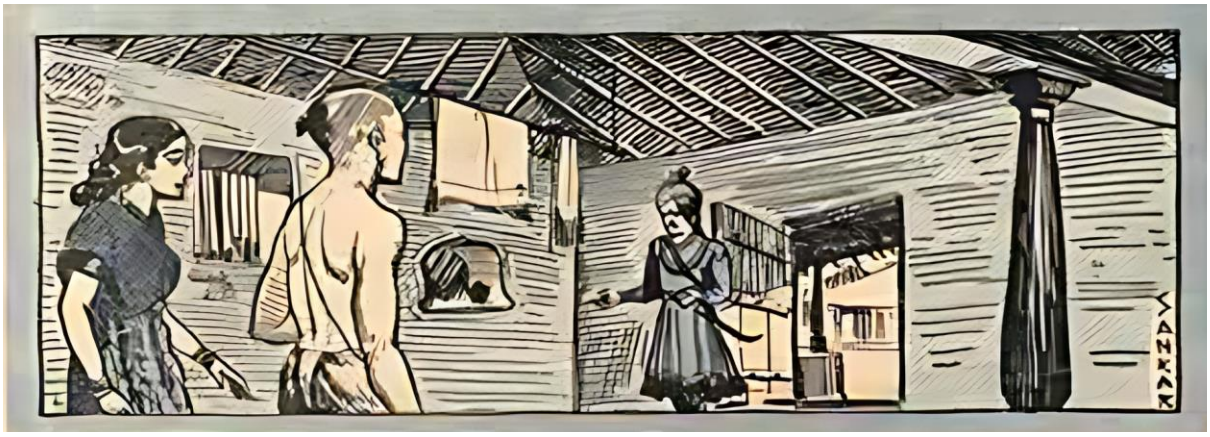
शर्मा काँपता-काँपता राजा के पैरों पर पड़ गया और उनसे माफी के लिए मिन्नतें करने लगा। राजा अचम्भे में पड़ गये। उन्हें भी यह सब मामला समझ में नहीं आ रहा था। उसी समय पासवाले पेड़ पर से एक स्त्री उतर कर आई। राजा ने सोचा शायद वह वनदेवी थी।

यह सोच कर कि उस बनदेवी ने उनकी शेर से रक्षा की है, राजा ने स्त्री को तुरन्त हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। वह वनदेवी न थी- सोमशर्मा की पत्नी थी। राजा आश्चर्य से देखने लगे। उसने अपनी सारी कहानी राजा से कह सुनाई। शेर में बदले हुये पति की खोज करते वक्त निशानवाले शेर का वहाँ आना हुआ। तुरन्त उसे पहचान कर वह पेड़ पर चढ़ गई। उस शेर ने ज्यों ही राजा पर पञ्जा उठा कर हमला किया त्यों ही उसने चावल फेंक कर अपने पति को मनुष्य बना दिया।

राजा ने यह सोच कर कि उसने उनकी प्राण रक्षा की है, उसकी खूब प्रशंसा की, और सोमशर्मा को अपने दरबार में एक ऊँची नौकरी भी दे दी। तब से वे दोनों पति-पत्नी सुख से जीने लगे।

उनका शेर बनने का शौक पूरा ही नहीं हुआ अपितु तब से उनके वंश का नाम "निशानवाला शेरों का वंश" सार्थक होकर प्रचलन में आया।

कुछ दिनों बाद वह सन्यासी भी जिसने सोमशर्मा को वह मन्त्र सिखाया था, उस तरफ, फिर आया। सोमशर्मा की बात सुन कर उसे बड़ा सन्तोष हुआ।





बहुत पहिले काश्मीर राज्य में एक कारीगर रहा करता था। वह निरा आलसी था। उसे यह न मालूम था कि कोई काम निश्चित अवधि में कैसे पूर्ण किया जाता है।

उन दिनों काश्मीर में जो राजा राज्य करता था, वह बहुत ही चतुर था। बडे से बड़े अपराध करने पर भी वह अपराधियों को सजा न देता था। लोगों को अपनी गलतियाँ अपने आप देखने के लिए प्रेरित करता था। उस राजा ने एक बार इस कारीगर को बुलवाकर आज्ञा दी कि नदी किनारे एक भव्य महल और सुन्दर बगीचा बनाया जाय। उसने इस काम को पूरा करने के लिए कई वर्षों का समय भी दिया।

राजा की आज्ञा के अनुसार कारीगर ने कहा कि वह तुरत काम शुरु कर देगा । परन्तु एक वर्ष बीत गया और उसने श्रीगणेश भी नहीं किया। उसी तरह बिना किसी काम के दूसरा साल भी बीत गया। तीसरा और चौथा साल भी यूँ ही व्यर्थ गया।

चार साल बाद राजा यह देखने के लिए चला कि उसका महल और बगीचा कहाँ तक बना है, मगर देखता क्या है कि न वहाँ काम है न कुछ है। कारीगर एक बड़े चट्टान पर बैठा, मजदूर कारीगरों के साथ गप्पे मार रहा था, हँसी मजाक कर रहा था। राजा ने यह सब देखा। पर उसने कारीगर से कुछ भी न कहा।

राजा को देखकर कारीगर ने हाथ जेड़ कर नमस्ते की और कहा- "महाराज ! आपके आगमन से यह जगह पवित्र हो गई है। इसी जगह महल बनाने का निश्चय किया है। इस जगह जो महल में बनाऊँगा



उसको देखकर दूसरे देश के राजा और साम्राट दाँतों तले अँगुली रख ईर्ष्या से कहेंगे-"अफसोस कि हमारे पास ऐसा महल नहीं है। यात्री लोग उस महल का सौन्दर्य देखकर अपने देश वापिस जा उसकी हजारों तरह प्रशंसा करेंगे। कवि उसके सौन्दर्य में तन्मय हो कविता लिखेंगे।"

ये बातें सुन राजा ने मन ही मन हँस कर कहा-"ए कारीगर ! तेरी बुद्धिमत्ता देख मुझे सन्तोष होता है। एक छोटी-सी कहानी सुनाता हूँ, सुनो--

एक किसान था। वह बहुत ही आलसी था। वह न ठीक समय पर हल ही चलाता था, न बीज ही बोता था। मगर कहता यह था-'देखो। मेरी भूमि कितनी उपजाऊ है।' इस तरह

अपनी भूमि की प्रशंसा करता खाली बैठा रहता। आखिर जब देखा तो जमीन कङ्कड़ और घास फूस से भरी थी। पसीना बहाकर काम करने से जमीन में कुछ पैदा होता है, तुम्ही बताओ क्या बातों से कोई काम बनता है ? मगर तुम तो वैसे आदमी नहीं हो।

मैं तेरा काम देख कर तुझे ईनाम देने आया हूँ। देखें, तेरा बनाया हुआ भव्य महल कहाँ है ? दिखाओ तो...." कहता कहता राजा आगे कदम रखने लगा।

कारीगर यह सोच कि राजा सचमुच उसकी तारीफ कर रहा है, बड़ा खुश हुआ। अधूरे मण्डप, आधे गढ़े हुए खम्भे बिना छत के कमरे आदि, राजा को दिखाता हुआ कारीगर और बढ़ बढ़ कर बातें करने लगा।

उसकी बातें सुन राजा को कारीगर के बारे में सब कुछ मालूम हो गया। "अहो। तू कितना बड़ा कारीगर है। कितनी जल्दी तू ने महल तैयार कर दिया है। कितना सुन्दर है यह। यह सब देखने के

लिए दो आखें तो काफी नहीं है।" राजा ने ताना कसा। पर कारीगर इसे सच जान फूला न समाया।

थोड़ी दूर पैदल चलने के बाद राजा ने कारीगर से कहा-"कारीगर ! तुम आगे आगे चलो और महल की खूबियों को एक सिरे से दिखाओ।"

राजा के हुक्म के मुताबिक वह आगे आगे चलने लगा। थोड़ी दूर जाकर कारीगर यकायक रुक गया। और उसने कहा-"महाराज ! यहाँ एक बड़ा गहरा खड्ड है, हमें दूसरे रस्ते से चलना चाहिए।"

परन्तु राजा ने कहा-"नहीं, नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है। मुझे तो यह जगह सपाट ही मालूम होती है। सामने मुझे एक महल भी दिखाई देता है। बढ़ो आगे...." कारीगर ने फिर अर्ज किया कि वहाँ अभी महल पूरी तरह तैयार नहीं हुआ है। और वहाँ बहुत ही गहरी खन्दक है।"

पर राजा ने फिर हुक्म दिया- "नहीं, मुझे तो यहाँ अच्छा-साफ बना बनाया रास्ता दिखाई देता है। बढ़ो आगे।" राजा के सैनिकों ने भी भाले उठा उसकी ओर आँखें लाल की। मौत के डर के मारे कारीगर जल्दी जल्दी





आगे बढ़ा और पानी से भरे उस खड्डु में जा गिरा। उसे तैरना नहीं आता था। सैनिक थोड़ी देर तो हिचके फिर उसको किनारे पर खींचकर उसकी जान बचा दी।

तब राजा ने कारीगर से कहा-"तूने कितनी अच्छी स्नानवाटिका बनाई है! इसे बनाने के लिए न जाने तूने कितनी मेहनत की होगी। मैं तेरी निपुणता की प्रशंसा करता हूँ।" बाद में, कारीगर को साथ लेकर राजा मण्डप देखने निकला। वह भी अपूर्व था। "क्या अच्छा मण्डप है। तू सचमुच कारीगर कहलाने के काबिल है। ये तोते की तस्वीर, ये मयूर नृत्य, ये फूल, ये बेलें; लगता है इन में जान हो। और वह सिंहासन कैसा चमक रहा है! और उसके दोनो ओर जो शेर बने हुए हैं, मालूम होता है कि उछलने के लिए तैयार हो, बताओ, कारीगर। उन्हे तुमने कैसे बनाया ? उस सिंहासन पर जरा तुम बैठ कर मुझे देखने का आनन्द तो दो।"

परन्तु कारीगरने जवाब दिया- "महाराज ! अभी मण्डप तैयार नहीं हुआ है। अब वहाँ सिंहासन भी नहीं है। अगले हफ्ते तक मैं सब पूरा कर दूँगा।"

"यह क्या कह रहे हो? पर मुझे तो सिंहासन चमकता हुआ दिखाई देता है। झूठ क्यों बोलते हो ? बैठो। जाओ, उस सिंहासन पर बैठते क्यों नहीं?" राजा ने धमकाया।

कारीगर राजा से डर कर उस जगह पर गया जहाँ सिंहासन बनाना था। वह दीवार के सहारे ऐसे बैठ गया जैसे कुर्सी पर बैठा हुआ हो। उसकी हालत ऐसी थी मानों उससे किसी ने कुर्सी लगाने के लिए कहा हो।

तब राजा ने कहा-"कारीगर ! मैंने तुझे इस सिंहासन पर बैठा कर गौरव प्रदान किया है। कहीं ऐसा न हो कि यह गौरव

जल्दी ही भूल जाओ। तुम दुपहर तक बिना इधर उधर हिले डुले, इसी तरह बैठे रहो। समझे !"

अगर वह उस तरह न बैठता तो राज-सैनिक भाले लेकर उसको सजा देने के लिए मौजूद ही थे।

यह खबर कि "फलाना कारीगर नये राजमहल के सिंहासन पर बैठा हुआ है" देखते देखते सारे शहर में फैल गई। कारीगर को देखने के लिए सरकारी अधिकारी, जनता- जो जो जहाँ थे, वहाँ तहाँ से झुण्डों में आने लगे। बिना किसी आधार के कारीगर को कुर्सी लगाये देख वे हँसी से लोट पोट होने लगे।

उसी समय राजा फिर वहाँ आ पहुँचा और कारीगर से कहा-"तुझे देख कर मैं ही नहीं; बल्कि राज्य की सारी की सारी प्रजा तेरी प्रशंसा कर रही है। सब यह सोच रहे हैं कि यह सिंहासन मुझे नहीं, परन्तु तुझे ही अधिक शोभा देता है।"

उसके बाद कारीगर को साथ लेकर राजा बगीचा देखने गया। पहले की तरह कारीगर आगे-आगे चल रहा था और राजा पीछे-पीछे। वह जगह



काँटों वाले पौधों से भरा पड़ा था। राजा को वह बिल्कुल पसन्द न आया। परन्तु उसने कारीगर से कहा-"देखो। हमारा बगीचा कितना सुन्दर है ! फूलों की सुगन्ध से महक रहा है। उस तालाब में भी साफ, निर्मल जल लहराता नजर आता है। इस तरह का रम्य बगीचा मैंने कहीं नहीं देखा है। जरा फूल तो तोड़ लाओ।"

जङ्गली फूलों में भला सुगन्धी कहाँ ? पर राजा के हुक्म को मान कर वह उन फूलों को तोड़ने लगा। काँटे उसके हाथों में चुभे और वे दर्द करने लगे।

"तूने बड़ी मेहनत से इन फूलों को पैदा किया है। वे बड़े सुन्दर लगते हैं। उनके सुगन्ध का तो कहना ही क्या? जरा सूँघ कर तो देखो।" राजा ने कहा। सैनिकों के भाले कारीगर को निशाने बनाये हुए ही थे। कारीगर को फूलों को अपने नाक के सामने रखना पड़ा। उसने जो उन्हें सूंघा तो उसकी नाक में दर्द करने लगी। फिर राजा ने हुक्म दिया-"तुम इन फूलों को पत्नी के लिए उपहार में ले जाना।"

राजा का हुक्म तो बदला नहीं जा सकता। तुरन्त कारीगर ने एक नौकर के हाथ कुछ फूलों को अपनी पत्नी के पास भिजवा दिए। करीगर के घर जाकर वह थोड़ी देर में ही वापिस आ गया।

"बाप रे बाप! मैंने फूल उस स्त्री के हाथ में जो दिए- उनको लेकर सन्तोष तो अलग, वह मुझे और अपने पति को भी बुरी तरह गालियाँ देने लगी।" उसके यह कहते जो लोग वहाँ जमा हो गए थे खिलखिलाकर हँसे।

तब कारीगर राजा के पैरों पर पड़ क्षमा माँगने लगा-"मैने बहुत बड़ी गलती की है महाराज!" उसे बहुत ही रञ्ज हुआ कि उसने यूँ ही चार वर्ष व्यर्थ कर दिए। वह तब से कार्य में लग गया। कुछ महीनों में नदी के किनारे एक दिव्य महल और बगीचा तैयार हो गया।

कारीगर की चतुराई जनता के सामने आई। राजा ने कारीगर को बहुत से ईनाम दिए। लोगों ने भी उसकी प्रशंसा की। राजा ने कारीगर को जो सबक सिखाया, वह उसके लिए ही नहीं, परन्तु उस राज्य के सब आलसियों के लिए भी अच्छा साबित हुआ।





पेड़ों के नीच समरसेन और उसके सैनिक निश्चेष्ट हो खड़े रहे। हाथियों के पैरों तले टूटी हुई टहनियाँ इधर उधर पडी हुई थी। ज्यालामुखी भी शान्त था।

परन्तु कहीं दूर जङ्गल जल रहे थे। कभी कभी आग दिखाई देती थी।

सब हिम्मत हार गये थे। किनारे पर लगे अपने जहाजों तक जाने की आशा भी जाती रही। और यह भी नहीं कहा जा सकता था कि मान्त्रिक का डर न रहा हो। फिर क्रूर पशु, अग्नि पर्वत, बड़ी बड़ी तेज नदियाँ। द्वीप में रहने वाले मनुष्यों के पास जाना चाहा, पर वे न जा सके।

अब क्या करना चाहिये ? कौन-सा रास्ता पकड़ा जाय ? सबको ये ही सवाल लगातार सता रहे थे। समरसेन ने बहुत सोचा, पर उसे कुछ सूझा नहीं। वह भी चिन्तित था। ऐसी हालत में उन्हे भयङ्कर आर्तनाद सुनाई दिया, जिसने उन्हे आश्चर्य में डुबा



दिया। यह आवाज एकाक्षी की न थी, न चतुर्नेत्र की ही। घोर विपत्ति में पड़े किसी मनुष्य का ही वह आर्तनाद था। सैनिकों ने अचम्भे में अपने नायक की ओर देखा। समरसेन ने झट अपनी तलवार खींची, सैनिकों से कहा-"आओ, मगर जरा सम्भल कर" और उस तरफ लपका जिस तरफ से वह आर्तनाद सुनाई पड़ रहा था। सैनिक भी अपनी अपनी तलवारें निकालकर उसके पीछे हो लिये। ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ते जाते थे, उस मनुष्य की आवाज और भी स्पष्ट होती जाती थी।

थोड़ी देर में वे सब वहाँ पहुँच गये। उस भयङ्कर दृश्य को देखकर वे भय से काँप उठे। मगर दूसरे क्षण उनमें आशा की तरह उत्साह भर गया। इस मन्त्र द्वीप में उन्होंने पहली बार एक जीवित मनुष्य को देखा था। परन्तु वह मनुष्य बड़ी आफत में पड़ा हुआ था।

उसे कोई हाथ पीछे कर पेड़ से बाँध गया था। और उस दयनीय हालत में उसको खाने के लिए पाँच छः भेड़िये ताक में बैठे थे। उसी समय भूख का मारा एक शेर भी वहाँ आ पहुँचा। अब उस आभागे के मांस को खाने के लिए मेड़ियों और शेर में युद्ध चल रहा था और डर के मारे वह व्यक्ति चिल्ला रहा था।

समरसेन को तुरन्त सारी परिस्थिति मालूम हो गई। शेर का पञ्जा लगते ही एक एक भेड़िया कराहता कराहता नीचे गिर पड़ता। उस तरह शत्रुओं का खातमा कर शेर आराम से बैठ उस मनुष्य के मांस को खाना चाहता था। देरी करने से खतरे की सम्भावना है, यह सोच समरसेन ने धनुष पर बाण चढ़ाया और शेर को निशाना बनाकर उसे छोड़ दिया। बाण

लगते ही शेर गरजता हुआ नीचे गिर पड़ा। झट सैनिक आगे कूदे। भूखे भेड़ियों ने उनपर हमला किया। सैनिकों ने अपनी तलवारों से उनके टुकडे टुकडे कर दिये। इसी बीच, समरसेन ने बँधे हुये आदमी को, रस्सियों को काटकर छोड़ दिया।

"आप सचमुच बडे दिलेर और दयालू हैं कि मुझे मौत के मुख से बचा लिया। आपका किया हुआ भला में कभी न भूलूँगा।" यह कहते कहते उसने सनरसेन और उसके सैनिकों को हाथ जोड़कर नमस्ते की।

उस व्यक्ति की शक्ल सूरत, बात करने का तरीका देख, समरसेन को आश्चर्य हो रहा था। उसे झट यह मालूम हो गया कि वह व्यक्ति उस मन्त्रद्वीप का रहने वाला नहीं था। समरसेन को यह भी शक हुआ कि वह शायद कुण्डलनी द्वीप का ही वाशिन्दा है।

"तुम इस देश के रहनेवाले हो ?" समरसेन ने पूछा।

"मैं.....मैं.... कुण्डलनी द्वीप का सैनिक हूँ। उस राज्य के सेना नायक समरसेन आप ही हैं न ?" उस व्यक्ति ने अचम्भे में पूछा।





उस प्रश्न को सुनते ही समरसेन और उसके सैनिकों के आश्चर्य की सीमा न रही। यह सब को मालूम था कि वह व्यक्ति उनके साथ जहाजों पर नहीं आया था। तो फिर वह वहाँ आया कैसे ?

उस नये सैनिक ने उनके सन्देह को ताड़ कर इस प्रकार कहा:-

"जब आप उस दिन जहाजों पर रवाना हुए थे, पुछलग्गा तारा दिखाई दिया था न ? तो भी आपने ज्योतिषी के सलाह की परवाह न की और चले आये। उसके थोड़ी देर बाद एक बड़ा तूफान आया और समुद्र बुरी तरह कल्लोलित हो उठा। महाराजा चित्रसेन बहुत घबराये। लगातार चार पाँच दिन आप के कुशल क्षेम के लिए उन्होने कुण्डलिनी देवी की पूजा करवाई।

परन्तु वह भयङ्कर तूफान लगभग एक सप्ताह तक चलता रहा। आप लोगों की क्या हालत होगी यह सोच प्रजा और राजा दोनों फिक्र में पड़ गये।

हर रोज हजारों आदमी राजमहल जाते और जहाजों में गये बन्धु मित्रों का कुशल समाचार पूछते।

आखिर चित्रसेन महाराज ने दरबारी ज्योतिषी को बुलवाया और उनसे कहा कि ज्योतिष की मदद से वे पता लगायें कि आप लोग कहाँ और किस हालत में हैं। ज्योतिषी ने एक शुभ मुहूर्त में आपकी स्थिति जाननी चाही। उन्होने बताया जो थोडे लोग जहाजों के साथ नहीं डूबे थे वे जैसे तैसे एक द्वीप में पहुँच गये हैं।

चित्रसेन महाराजा ने मन्त्री सामन्त आदि से सलाह मशवरा किया। क्यों कि आप थोड़े ही सैनिकों के साथ एक नये द्वीप में थे और वहाँ खतरे की हमेशा सम्भावना हो सकती थी, उन्होंने यह निश्चय

किया कि आपकी मदद के लिए एक और सेना भेजी जाए। एक सप्ताह के समाप्त होने से पहिले ही कुम्भाण्ड के नेतृत्व में आपको ढूँढने के लिए एक सेना भेजी गई।"

"यह कुम्भाण्ड कौन है?.........ओहो, कुम्भाण्ड जागीरदार क्या ?" समरसेन ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा।

"हाँ, वही। उसी की वजह से ही मैं इस आफत में फँसा हुआ हूँ।" सैनिक ने गुस्से में दाँत पीसते हुए कहा।

समरसेन उसकी बातें सुन चकित हो गया। सैनिकों को भी कुछ समझ में नहीं आया। फिर वह नया सैनिक यों कहने लगा:-

"हम कुछ दिनों में ही यह द्वीप देख सके। दक्षिण के ईलाके में जहाजों से उतर हम किनारे पर आए। कुम्भाण्ड हम सब को वहाँ रहने को कह स्वयं दो सिपाहियों के साथ द्वीप के अन्दर गया।

वह सारा का सारा दिन उसकी वापसी की इन्तजारी में हमने काटा। अगले दिन सवेरे कुम्भाण्ड अकेला वापिस आया। आते ही उसने हमारे धनुष-बाण इकट्ठे किये, और उनका एक गट्ठर बँधवा कर समुद्र में फिंकवा दिये।



मामला क्या था, हमें कुछ समझ में नहीं आया। इसके अलावा, उसके साथ जो दो सैनिक गये थे, वे भी वापिस नहीं आए। पूछने पर उसने कहा कि उन्हें जङ्गली जाति के लोगों ने मार डाला है।

हमें शक हुआ। हमने सीधे ढङ्ग से पूछा कि उसने हमारे धनुष-बाण समुद्र में क्यों फिकवा दिए हैं। कुम्भाण्ड ने जवाब दिया कि जब तक वह सेना का सरदार है, चाहे वह कुछ भी करे; सिपाहियों को पूछने ताछने का कोई अधिकार नहीं है।" "तो क्या कुम्भाण्ड ने भी अपना धनुष बाण


CHITRA

समुद्र में फेंक दिया था ?" समरसेन ने पूछा।

"वही तो बात है। उसने अपना धनुष-वाण अपने पास ही रखा। जब हमने पूछा तो उसने कहा कि पूछ-ताछ करना उसकी आज्ञा को न मानने के समान है।

उसके थोड़ी देर बाद ही, भाले बरछे लिए कुछ जङ्गली जाति लोग चिल्लाते- चिंघाड़ते हमारी तरफ आने लगे। हमारे पास बाण तो थे ही नहीं, इसलिए जो कुछ हाथ में आया... पत्थर, लकड़ी वगैरह उन पर फेंक कर हम आत्म-रक्षा करने लगे। परन्तु कुम्भाण्ड ने हमें आज्ञा दी कि हम उन जङ्गली लोगों के सामने झुक जाय। उसका यह अजीब रवैया देख कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। हम में से कई लोग तब तक जङ्गलियों के भाले बरछों के शिकार हो चुके थे। बाकी के सामने सिवाय हार मानने के और कोई चारा नहीं था।"

"उस तरह जब तुम लोग लड़ रहे थे, कुम्भाण्ड ने तुम्हारी कोई मदद न की?" समरसेन से पूछे बगैर नहीं रहा गया। जवाब देते हुए सैनिक ने यों कहा:-



"नहीं तो ! ज्यों ही हमने हार मान ली, हाथ पीछे कर हमे पेड़ों से बाँध दिया गया। कुम्भाण्ड को उन लोगों ने एक पालकी जैसी चीज़ में बिठा लिया, और उसको कन्धों पर उठा कर हो-हल्ला करते हुए अपने गाँव ले गये।

हमें उन जङ्गलियों का कैदी होकर रहना पड़ा। और कुम्भाण्ड उनका राजा-सा बन गया। जैसा वह कहता वैसा वे जङ्गली लोग करते। उन लोगों पर उसने इतना रौब और अधिकार कैसे जमा लिया, इसके

बारे में हमें कई सन्देह सताया करते।" "वही शक मुझे हो रहा है !" समरसेन ने हँसते हुए कहा।

"दो-चार दिनों में ही हमारा सन्देह दूर हो गया। उन अङ्गलियों को धनुष-बाण क्या चीज़ है; नहीं मालूम था। मनुष्य का एक जगह बिना हिले-जुले खड़े होकर दूर के किसी पक्षी या जानवर को, बाण छोड़ कर मारना उन्हें बहुत बड़ा चमत्कार सा लगा। और यह दिखाने केलिए कि वह हुनर वह अकेला ही जानता है; कुम्भाण्ड ने हमारे धनुष-बाण समुद्र में फिंकवादिये थे। यह रहस्य हमें तब नहीं मालूम हुआ। एक रोज़ सारा का सारा जङ्गल ढोल ढमाके के शौर से गूंज उठा। सैकड़ों जङ्गली लोग हम जिस गाँव में थे वहाँ आये। उन सब के सामने इस दुष्ट कुम्भाण्ड ने धनुष वाण पर अपना चातुर्य दिखाया। आकाश में उड़ते हुए एक गरुड़ को बाण मार कर भूमि पर गिरा दिया। दूर चरते हुए किसी हरिण को भी, फिर एक और बाण से मारा।

जिन लोगों को यह भी न मालूम था कि धनुष-बाण क्या चीज है, जङ्गली कुम्भाण्ड के चारों ओर नाचने लगे। उनकी मदद से वह इस द्वीप का राजा बनना चाहता था।"

"यहाँ शासन करने के लिए है क्या ? हिंस्रक जन्तु, अग्नि पर्वत, और एक-दो मान्त्रिक।" समरसेन ने हँसते हुए कहा।

"मान्त्रिक ?" डर से थर-थराते हुए उस सैनिक ने पूछा-"उनके बारे में सुना है। हमें !"

"सुना ही नहीं, अगर चाहिए तो देख भी सकते हो।" ये शब्द उस ईलाके में गूंजने लगे और दूसरे ही क्षण चतुनेत्र अपनी टोपी हाथ में लिए उनके सामने प्रत्यक्ष हो गया। [अभी और है]





बादशाह अकबर के दरबार में तानसेन गायक थे। तानसेन की कीर्ति दूर दूर तक फैली हुई थी। अकबर के दरबार में बीरवल नाम का एक विदूषक भी रहा करता था। वह बादशाह के लिये प्राण के समान था।

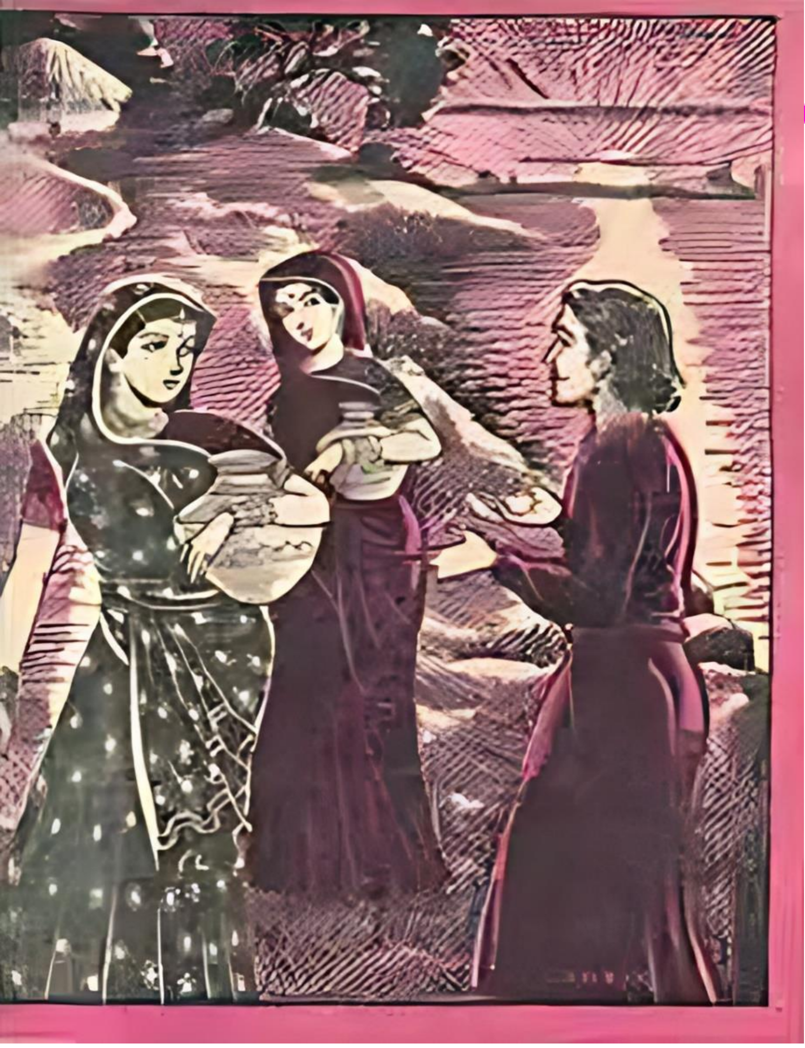
एक बार बीरबल ने बादशाह के पास जाकर उत्सुकता से कहा-"हुजूर ! कहते हैं कि दीपक राग बहुत ही अच्छा होता है। उसे एक बार सुनने की इच्छा हो रही है।"

बादशाह ने कहा-"इसमें क्या रखा है? आओ, अभी सुन लेना।" अकबर ने तुरत तानसेन को बुलवाया और उन्हें गाने की आज्ञा दी। उस समय सङ्गीतज्ञ दीपक राग किसी के सामने नहीं गाया करते थे। पर क्या किया जाय ! मर्जी हो या न हो; तानसेन को बादशाह का हुक्म मानना ही पड़ेगा। इसलिए बिना किसी और विचार के तानसेन ने दीपक राग का आलापन आरम्भ किया।

आलापन तो कर दिया, परन्तु उस समय तानसेन के हृदय के अन्दर, उन्हें लगा मानों कोई ज्वाला जल रही हो। उन्होंने जो भूल कर दी थी, वे उसके लिए पछता रहे थे। उनके मन में एक बेहद दर्द-सी पैदा हो गई थी। उससे उनका स्वास्थ्य भी खराब हो गया। ऐसी हालत में, तानसेन बादशाह अकबर की अनुमति लेकर गुजरात के साबरमती नदी के किनारे जा पहुँचे।

उन दिनों मुगल गुजगत पर आक्रमण करने के लिए लालायित हो रहे थे। उनके डर से स्त्रियाँ सवेरे होने से पहले ही नदी जाकर पानी ले लाया करती थीं।

रमादेवी



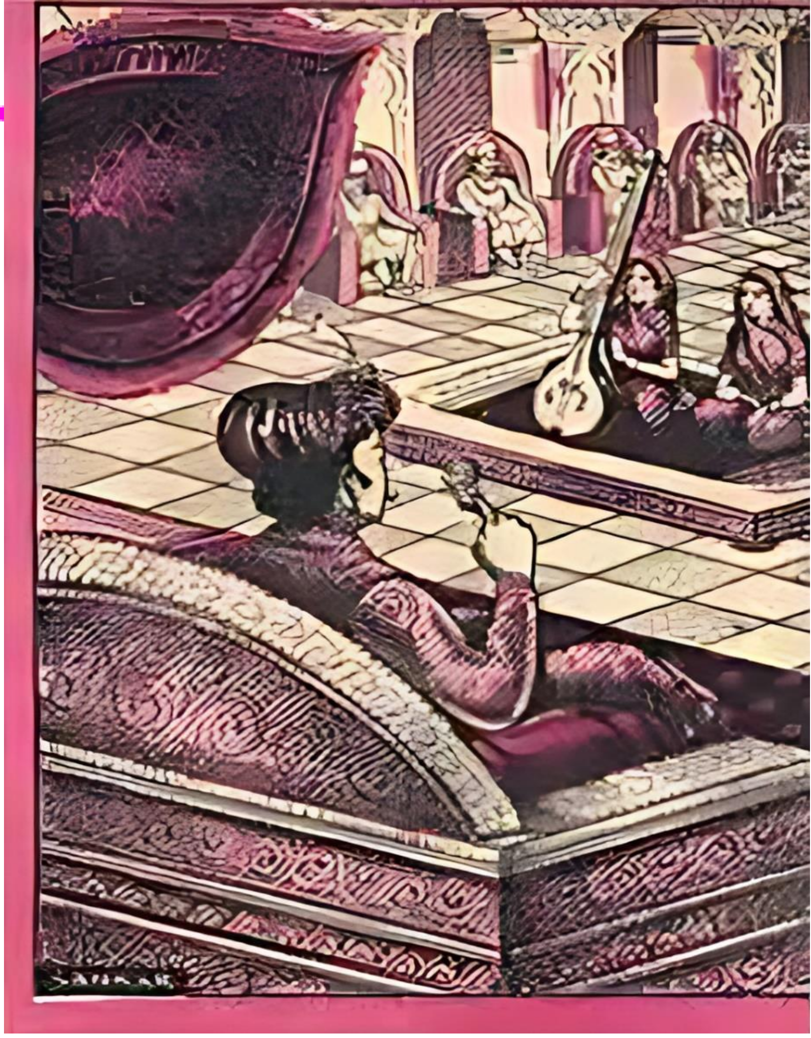
एक गाँव से दो बहनें पानी के लिए साबरमती नदी जाया करती थीं। उनमें बड़ी बहन का नाम था 'तानी' और छोटी का नाम था 'नानी'। एक दिन उन दोनों ने नदी के किनारे बैठे हुए तानसेन को देखा।

उन्हें देखते ही, बिना किसी प्रयास के उनके मुख से निकला-"लगता है, वहाँ कोई दीपक राग को गाने के कारण कष्ट झेल रहा है।"

तानसेन को ये बातें सुनते ही बड़ा आश्चर्य हुआ। झट भाग कर उनके सामने अपनी सारी कहानी कह सुनाई। पहले तो उन्हें देख कर दोनों घबराई। परन्तु "बहन बहन !" कह कर प्रेम से पुकारने के कारण और उनकी कहानी सुन कर उन्हें तानसेन पर यकीन हो गया।

तानसेन पर उन दोनों बहनों को तरस आ गया और उन्हें अपने घर ले गये। उनको कुछ आराम मिलने के बाद 'तानी' ने मीठे स्वर में मेघ मल्हार का राग गाना शुरू किया। एक ही बार नहीं, उसने कई बार वह राग गाकर सुनाया। चूँकि मेघ-मल्हार का असर दीपक राग से ठीक उल्टा होता है; इसलिए थोड़ी देर में अङ्गारे होते उनके दिल में शान्ति आई। उनकी मनोव्याधि कम हुई। जब तानसेन पूरी तरह तन्दुरुस्त हो गये, उन दोनों बहनों ने उनसे कसम खिलवाई कि यह रहस्य वे किसी से न कहेंगे और उसको बिदा किया। कुछ दिनों बाद तानसेन दिल्ली पहुँचे।

तानसेन को पूर्णतः स्वस्थ पा बादशाह को बहुत सन्तोष हुआ और बादशाह ने तन्दुरुस्त कैसे हुये उसके कारण दरबार के और पण्डितों द्वारा मालूम कर लिया था। तब से उनके मन में मेघ-मल्हार राग सुनने की इच्छा जम गई।



अब बादशाह ने तानसेन को हुक्म दिया कि वे मेघमल्हार राग गायें। उनके लाख कहने पर भी कि वे वह राग नहीं जानते हैं; बादशाह ने कुछ सुना नहीं। आखिर मौत के डर से तानसेन उन बहनों के रहस्य को बताने के लिए बाध्य हुआ। बादशाह तब तानसेन को जबरदस्ती साबरमती नदी के किनारे ले गया। रोज की तरह तानी और नानी भी नदी पर आये। उन दोनों ने तानसेन के साथ खड़े हुए बादशाह को भी पहचान लिया।

बादशाह ने उनके पास जाकर मिन्नत की-"क्या मुझे एक बार मेघमल्लार नहीं सुनाओगे ?" बहनें ना न कर सकीं।

विशेष रूप से सुशोभित सभा भवन में ठीक वक्त पर उन दोनों बहनों ने मेघमल्हार राग गाना शुरू किया। बादशाह गाना सुन कर खुशी में मस्त हो गया और बिना उनके माँगे ही उन दोनों बहनों के पतियों के नाम दो बड़ी बड़ी जागीरें लिख दीं। सानी और नानी केवल सङ्गीत विद्या में ही प्रवीण न थीं, वे दोनों बड़ी पतिव्रता भी थीं। क्योंकि बादशाह के हुक्म को माने बगैर वे रह न सकती थीं उनको भरी सभा में गाना पड़ गया था। उनका यह विश्वास था कि ऐसी सभाओं में गाना विवाहित स्त्रियों को शोभा नहीं देता। इसलिए सभा में आने से पहिले ही उन्होंने आवश्यक इन्तजाम कर लिया था।

सभा खतम हुई। बादशाह का उनके सङ्गीत की तारीफ करना और ईनाम देना भी ख़तम हुआ। तब अपने साथ लाये हुये चाकुओं से उन दोनों बहनों ने एक दूसरे को भोंका और एकदम फर्श पर गिर पड़ीं। यह देखते ही तानसेन भी बेहोश हो गये।

बाद में, तानी और नानी के पति वहाँ आ गये। उनके सामने बादशाह अपना सर ऊँचा न कर सका। वह पछता रहा था कि बिना सोचे-विचारे गलती कर बैठने से बिचारी दो स्त्रियों को अपने प्राण देने पड़े।

दोनों बहनें, सभा में जाने से पहले अपने पतियों के नाम पत्र लिख गयी थीं।

वे इस प्रकार हैं-

"मुगल सम्राट की आज्ञा पालन कर हमें भी सभा में गाना पड़ रहा है। हमें इस तरह भरी सभा में गाना हमारे पातिब्रत धर्म के लिए धब्बा मालूम होता है। इस कारण हमें यह ही ठीक जँचा कि हम अपने प्राणों की आहुति दे दें। स्वर्ग में हम फिर मिलेंगे। विदा.. !"

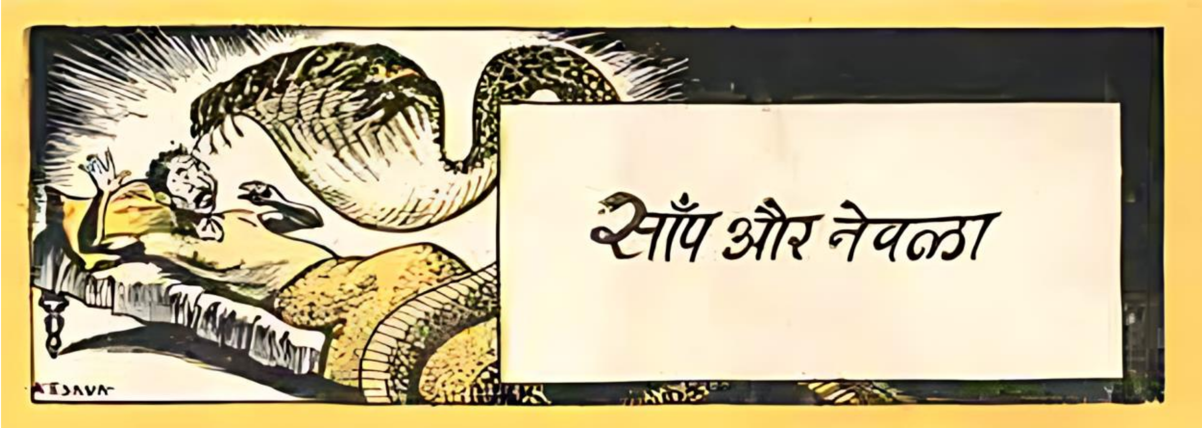
मेघमल्हार राग गाकर उन दोनों बहनों ने उन्हें मौत के मुँह से निकाला था। उसके अपने वचन न रखने के कारण ही उन दोनों की मृत्यु हुई।

तानी और ननी की मृत्यु का कारण वे ही थे, सोच कर तानसेन बहुत दुःखी हुये। उन दानों का नाम कैसे चिरस्थाई हो, वे यह सोचने लगे।

इसी वजह से, सङ्गीत स्वर में जहाँ जहाँ 'ओ' आता है, तानसेन अपने सङ्गीत में, "तोम, ताना, नाना" भी उपयोग करते आये थे। वह प्रथा अब भी संगीत शास्त्र में प्रचलित है। इस तरह तानसेन ने उन दोनों बहिनों को अमरता प्रदान की। वे सङ्गीत का भाग बन गई।

इतना ही नहीं, तानसेन जहाँ पहिले उन दोनों बहनों से मिले थे, उस स्थान पर उनकी स्मृति में, उन्होंने एक सङ्गीत मन्दिर बनवाया। उसके खण्डहर अब भी अहमदाबाद में अलीस पुल के पास विद्यमान हैं।





हिसार में रामलाल नाम का एक जमीन्दार रहता था। वह सापों से बड़ा डरता था। अगर कहीं पानी का साँप भी देख लेता था, तो यह सोचकर कि फणवाला नाग दिखाई दिया है, उसके होश उड़ जाते थे।

एक दिन सचमुच उसे खेत में फणवाला साँप दिखाई पड़ा। वह फण उठाकर रेङ्ग रहा था। उसकी फूँफकार की ध्वनि भी आ रही थी। दूसरे क्षण रामलाल को ऐसा लगा कि वह साँप उसके रास्ते से गुजरा है, उसे देखकर उसने फूँफकारा है और वह उसका पीछा कर रहा है। उसने उस दिन से खेत की ओर जाना ही बन्द कर दिया।

रामलाल को रोज सपने में वह साँप दिखाई देता था। उससे पहले क्यों कि नौकरों के साथ वह भी खुद खेत में काम करता था, उसे रात को अच्छी नींद आती थी। वह अब डर के मारे घर से बाहर नहीं निकलता था, इसलिए उसको खाया हुआ खाना भी नहीं पचता था, ठीक तरह नींद भी नहीं आती थी और उसे हमेशा सपने आये करते। उन सपनों में उसे साँप दिखाई दिया करते।

एक रात जब सब गहरी नींद सो रहे थे, रामलाल पलङ्ग से गिर पड़ा और चिल्लाने लगा "बाप रे बाप, साँप ने काट खाया है, जहर चढ़ रहा है। मुख से झाग भी निकल रही है, मैं मर रहा हूँ।" उसका चिल्लाना सुन घरवाली यह समझकर कि सचमुच शायद साँप ने काट खाया है, बत्ती ले कर इधर उधर साँप को खोजने लगी। जब साँप का कहीं पता न लगा तो

रामदत्त



रामलाल की पत्नी ने कहा-"कहीं सपना तो नहीं देखा था ?"

"हाँ। दो फणोंवाला साँप। मेरे देखते ही वे दो फण दस फण बन गये। 'मैं तक्षक हूँ और तू परीक्षित महाराज है। मैं तुझे काटने आया हूँ, बचो' कहते हुए मुझ पर कूद पड़ा। फिर जब देखा तो दस फण की जगह हजार फण मालूम हुए।" रामलाल ने कहा।

"आप तो ऐसे कह रहे है जैसे फणों को वाकई गिन लिया हो।" उसकी पत्नी ने उसका मजाक किया।

"मैं तो यहाँ दर के मारे मर रहा हूँ और तुझे मजाक सूझ रही है।" रामलाल ने पत्नी को डाँटा-डपटा। "थोड़ा-सा पानी पीकर, कृष्ण नाम को जपते जपते सो जाईए, फिर वह सपने में नहीं आयेगा।" यह सलाह देकर उसकी पत्नी सो गई। परन्तु रामलाल को उस रात नींद न आई।

इस तरह रोज नींद न आने के कारण पति की सेहद कहीं और खराब न हो जाये, यह सोच रामलाल की पत्नी ने कहा-"इन्द्रसेन के पास जाकर दवा तो लीजिए।" और रामलाल को डाक्टर के पास भेज दिया।

हिसार में, डा. इन्द्रसेन ने काफी नाम कमाया था। अंग्रेजी, होम्योपेथी, यूनानी, आयुर्वेद आदि सभी वैद्यकों को वे जानते थे। उन्हे मन्त्र तन्त्र और भूत वैद्य भी मालूम था। जो कुछ रामलाल ने कहा उन्होने सुना और कहा-"कल शाम को फिर एक बार आना। तब मैं तुम्हारे लिए दवा तैयार करके रख दूँगा।"

रामलाल अगले दिन ड़ा इन्द्रसेन के घर गया। उन्होने एक फुट लम्बा और आधा फुट चौड़ा एक गन्ने का बॉक्स रामलाल के सामने रखा। बाक्स को धागे से मजबूती से बाँध दिया, कहीं ऐसा न हो वह खुल

जाय। धागे पर एक सील भी लगा दी ताकि बह खोला न जा सके।

"यह क्या है?" रामलाल ने पूछा।

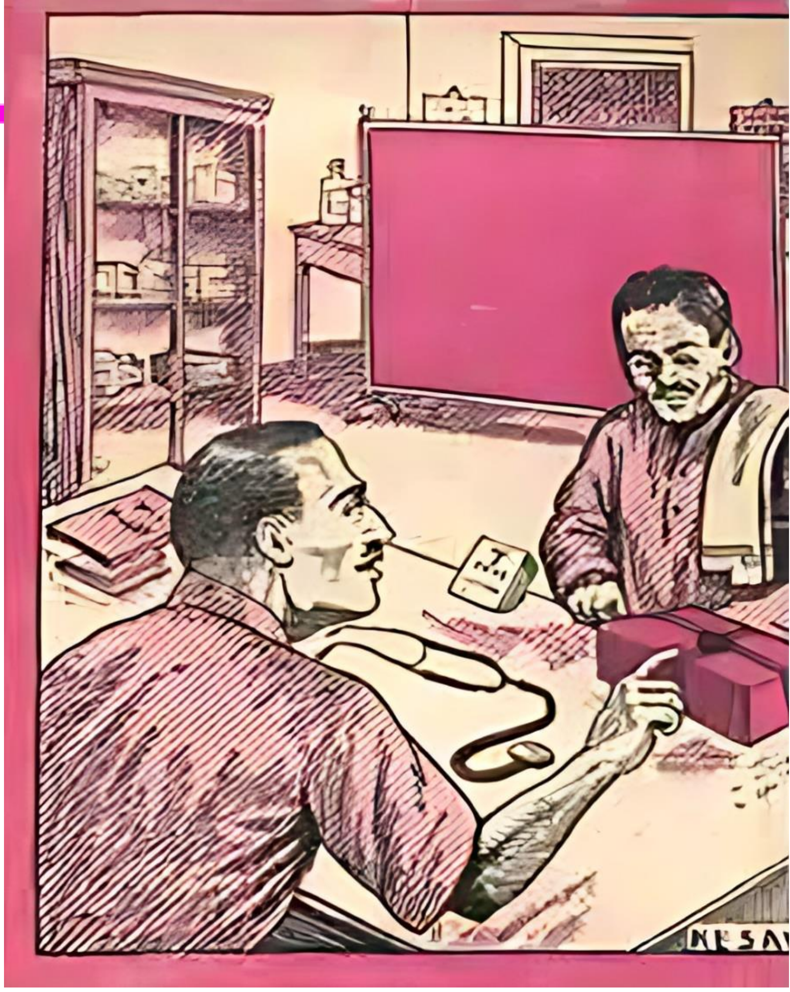
"बाक्स को पकड़कर तो देखो, तुम्हे ही मालूम हो जायेगा।" डाक्टर ने कहा।

रामलाल ने जब बाक्स उठाया तो उसे लगा कि कोई चीज एक तरफ से दूसरी तरफ लुढ़क रही है।

रामलाल झट उठ खड़ा हुआ। उसने कहा-"इसमें तो कोई चीज़ हिल रही है।"

"कुछ भी तो नहीं है। नेवला है। उस बॉक्स को आज से सोते समय अपने पलङ्ग के नीचे रख लेना। फिर तुम्हे साँप नहीं सतायेंगे। मगर बाक्स को हरगिज न खोलना। अगर खोलोगे तो नेवला भाग जायेगा और साँप आ जायेंगे।" डा. इन्द्रसेन ने कहा।

"खोलना नहीं चाहिए; इसी वजह से ही आपने लाख की सील लगाई है। इसे भला में क्यों खोलूँगा ? हाँ.... मगर.... मुझे एक बात समझ में नहीं आती, अगर इस बाँक्स को न खोलें तो नेवले को खिलाऊँगा कैसे ?" रामलाल ने पूछा। इस सवाल का,



डा. इन्द्रसेन ने जवाब दिया-"उसके खाने पीने का इन्तजाम मैने बॉक्स में ही कर दिया है।"

उस नेवले की मेहरबानी से रात को रामलाल को बड़ी अच्छी नींद आई। उस रात भी सपने में आने को तो नाग आये, पर झट बॉक्स से न जाने नेवला कैसे निकला, और एक एक साँप को पकड़कर, चीर फाड़कर उसने खा लिया।

सपने में रोज इस तरह चूँकि नेवला साँपों को खा जाया करता था, शायद इसीलिए रामलाल को एक रात सपने में एक भी साँप न दिखाई दिया।



रामलाल एक दिन गन्ने के बेचने से मिले हुए एक सौ रुपये का नोट और नेवले वाले बॉक्स को लेकर डा. इन्द्रसेन के पास गया।

डा. इन्द्रसेन ने, रामलाल के दिए हुए नोट को जेब में रखते हुये पूछा-"अब तुम्हे ठीक नींद आती है कि नहीं? सपने में अब तो साँप नहीं सता रहे हैं?"

"जी नहीं" रामलाल ने कृतज्ञता दिखाते हुए कहा।

"तब इस बाक्स को क्यों वापिस लाए हो ?" डाक्टर ने पूछा।

"मेरे कारण ही यह नेवला इस बॉक्स में बन्द पड़ा है। तकलीफ हो रही होगी । में इसे बॉक्स में से छुड़वाने के लिए आया हूँ।" रामलाल ने कहा।

"वह काम तुम्ही करो।" डा. इन्द्रसेन ने बताया।

रामलाल ने भक्ति के साथ उस लाख की सील को और धागे को तोड़ना चाहा। इतने में, बाक्स हिला और अन्दर से किसी चीज के इधर उधर हिलने का शब्द सुनाई दिया।

रामलाल ने कहा- "कब बाहर निकलें, इस उतावलेन में, शायद नेवला कूद फाँद

रहा है।" उसने बॉक्स का ढ़कना खोला। इस डर से कहीं नेवला उसी पर न कूद पड़े, वह बॉक्स से थोड़ी दूर हटकर खड़ा हो गया।

बॉक्स में से नेवला तो अलग एक चिऊँटी भी बाहर न निकली।

"नेवला का क्या हुआ ?" रामलाल ने उत्कण्ठा से पूछा।

रामलाल ने धीमे धीमे बॉक्स के पास आकर उसके अन्दर झुक कर देखा। बॉक्स के एक कोने में एक रबर की गेन्द पड़ी हुई दिखाई दी।

रामलाल ने आश्चर्य से कहा-"मगर डाक्टर साहब, मैं तो यह सोचा करता था जो चीज इधर से उधर बॉक्स में हिलती है, बह नेवला है। तो यानी यह गेन्द ही थी जो इधर उधर हिल डुलकर आवाज किया करती थी।"

"हाँ" डा. इन्द्रसेन ने मुस्कराहट के साथ कहा।

रामलाल ने खुश होते हुए कहा-"यह सब तो माया-सी लगती है।"

"सपनों के साँपों को मारने के लिए मुझे यह सरनोंवाला नेवला तैयार करना पड़ा। उन जैसे साँपों को मारने के लिए मामूली लाठी डण्डों को इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। इसी बजह से मुझे इस ताकतवर, गजब ढ़ानेवाले नेवले का निर्माण करना पड़ा और तुमने यह भी देख लिया कि उसने काम कर दिखाया है।" डाक्टर इन्द्रसेन ने ठठा मारकर हँसते हुए कहा।

तब से रामलाल का सापों के बारे में डर जाता रहा। रात को वह खूब आराम से सोया करता। वह फिर से अपनी खेतीबाडी करने लगा।



कौओं का राजा



कई हज़ार साल पहले अनूप नाम का राजा अवन्ती देश में राज्य करता था। उसके दरबार में एक बड़ा ज्योतिषी रहा करता था।

वह ज्योतिषी रोज सवेरे सवेरे नदी में स्नान करने के लिए जाया करता था। वह एक रोज नहा कर, घर वापिस आ रहा था। रास्ते में आमों का एक बगीचा था। जब ज्योतिषी आम के पेड़ों के नीचे से जा रहा था कि एक कौवे ने ठीक उसी समय उस पर बीट कर दी।

ज्योतिषी गुस्से से खौल उठा। उसने प्रतिज्ञा कर ली कि वह न सिर्फ उस कौआ का ही काम तमाम करेगा, जिसने उस पर बीट की थी, बल्कि कौओं की जात का सत्यानाश कर देगा।

प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए परिस्थितियों भी अनुकूल मिल गईं। खैर, राजा के महल के पास एक फूस की झोपड़ी थी। उस झोपड़ी में एक बूढ़ा रहा करता था। उस दिन वह धूप में धान बिछा कर रखवाली के लिए बैठा हुआ था। दुपहर हुई। पहरे पर बैठा बूढ़ा ऊँघने लगा।

एक गधा जो पास ही चर रहा था। बूढ़े को ऊँघता देख धान पर जुगत मारने लगा। बूढ़े ने गधे को भगाया, पर गधा वहाँ से हटा नहीं।

इससे ऐसे काम नहीं चलेगा, यह सोच बूढ़े ने गधे को पकड़ लिया। एक ताड़ के पत्ते पर तेल लगाया, उसे गधे की पूँछ से बाँध दिया और उसको आग दिखा दी। गधे ने भागना शुरू किया। वह डर के

पृथ्वीराज

मारे राजा के हाथियों के रहने के मकान में घुस गया। उसके घुसते ही उस मकान में भी आग लग गई।

आग में फँसे हुए हाथी चिंघाड़ने लगे, इधर उधर भगदौड करने लगे। लोग भी भय से काँप उठे। हाहाकार होने लगा।

जैसे तैसे, महावतों ने उन हाथियों को पकड़कर जञ्जीरों से बाँध दिया। महाराज को इस घटना को देख कर बहुत रञ्ज हुआ। घायल हुये हाथियों की गजवैद्यों ने हर तरह से चिकित्सा की। औषधियों से तेल बनवा कर मालिश करवाई। पर हाथियों की हालत सुधरी नहीं। उनके घाव नहीं भर सके।

कुछ दिनों बाद, राजा ने बातों बातों में यह बात ज्योतिषी से भी कही। ज्योतिषी तो इस ताक में बैठा ही था कि उसे कब मौका मिलता है और कब वह कौओं से अपना बदला लेता है। उसे यह मौका पा बड़ा सन्तोष हुआ।

"महाराज ! अगर इन हाथियों के घाव भरने हैं, तो कौथो की चरबी को लाकर लगाना काफी होगा। मुझे नहीं मालम क्यों ये गजवैद्य जो



अपनी इतनी बखानते हैं, इतना भी नहीं सोच पाये ?" ज्योतिषी ने पूछा।

राजा को यह चिकित्सा अच्छी जँची। इस में कुछ खर्च भी नहीं होता था। राजा ने ढिँढोरा पिटवा दिया कि जिसको जहाँ कौआ दिखाई दे उसे वहीं मार कर महल में ले आये। फिर क्या था, राज्य में हर कोई शिकारी बन गया। सैकड़ों, हजारों कौओं को मार कर वे लाने लगे। राजा द्वारा किये जाते हुये इस अत्याचार को देखकर कौओं के सरदार वायसराज ने राजा से मिलने की ठानी।

वायसराज उड़कर राजा के महल में जा पहुँचा। तब भरा दरबार लगा हुआ था। वायसराज सीधे उड़ते हुये राजा के सिंहासन के बगल में जा बैठा। यह देख सेवक लोग कहने लगे-"यह क्या, यहाँ कौआ आ बैठा है ?" उसे पकड़ने की कोशिश करने लगे। परन्तु महराज ने कहा कि उसका कुछ मत बिगाड़ो। उसे यहीं रहने दो।

तब वायसराज ने मनुष्यों की भाषा में राजा से इस प्रकार कहा।

"राजा ! आप मेरी बात जरा गौर से सुनिये। राजा को यह चाहिये कि वह सोचे दूसरों की सलाह ठीक है कि नहीं। नहीं तो यह कईयों के लिये दुःख का कारण बनता है। आपके ज्योतिषी ने कौओं की चरबी को हाथियों के घावों पर लगाने की सलाह दी। अगर सच पूछा जाय तो कौओं के शरीर में चरवी होती ही नहीं है। इसलिये इस सलाह के पीछे दुष्टता और शरारत के सिवाय कुछ नहीं है। आपको इस बात पर सोचना चाहिये था।"

ये बातें सुन राजा आश्चर्य में पड़ गया। उसने वायसराज से पूछा-"क्या कारण है कि कौओं के शरीर में चरबी नहीं होती?"

"मनुष्य समाज ही उसका शत्रु है। इसलिए हमेशा मौत से डरने वाले कौओं में चरबी कैसे पैदा हो सकती है महाराज ?" वायसराज ने पूछा।

इस प्रश्न से राजा को सत्य मालूम हो गया। कौओं को न मारने की आज्ञा जारी कर दी। उस ज्योतिषी को जिसने उससे यह दुष्ट कार्य करवाया था, पद से हटा दिया। उसने अनाज के अधिकरी को आज्ञा दी कि तब से रोज कौओं को दो मन धान खिलाया जाय।





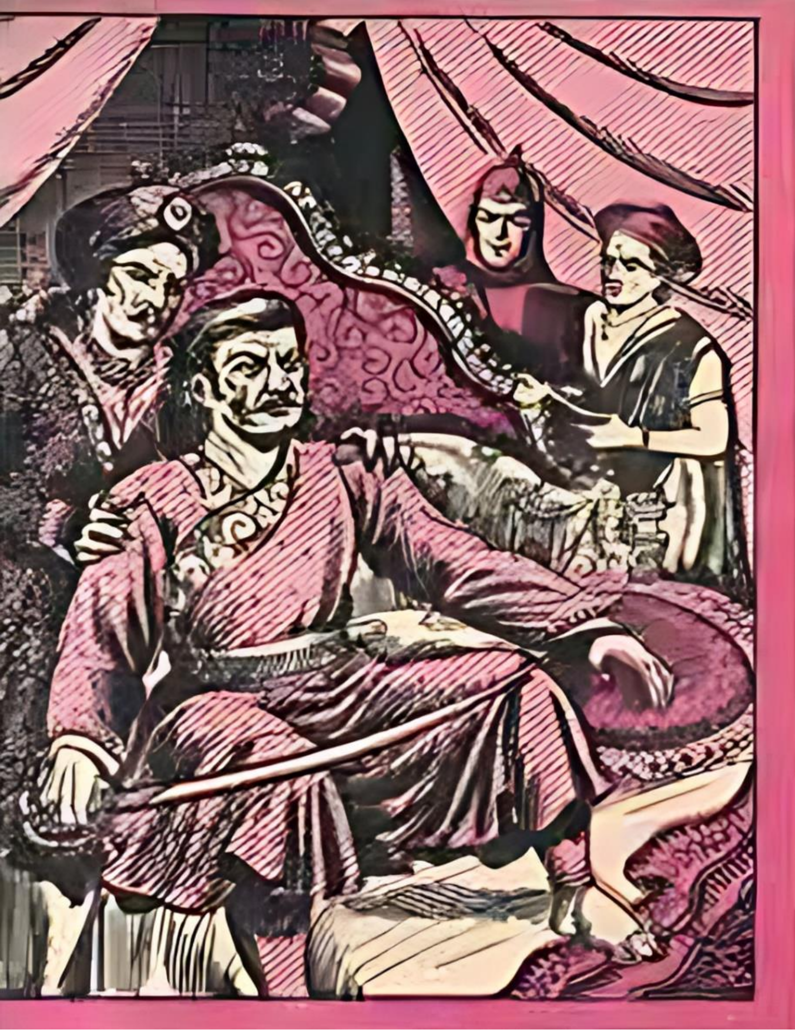
जय-पराजय

विदर्भ देश में पहले कभी विजयपाल नाम का राजा राज्य करता था। उसके बल पराक्रम के बारे में देश देशों में किम्बदन्तियाँ फैली हुई थीं। उनके विषय में कविताएँ गाई जाती थीं। इसका कारण यह था: उन्होंने कभी भी लड़ाई के मैदान में हार नहीं खाई थी। आस पास के देशों में ऐसा कोई राजा न था जिसने उससे युद्ध न किया हो और हार न खाई हो।

विजयपाल का कोई लड़का न था। जलजादेवी नाम की एक लड़की ही थी। वह सयानी भी हो चुकी थी। पर यह सोच कर कि उस जैसे पराक्रमशाली की पुत्री से विवाह करने के लिए कोई पराक्रमी वीर नहीं है; उसने उसके विवाह के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। जलजा से शादी करने के लिए कई राजकुमार तैयार थे, पर वे विजयपाल से लोहा लेने के बदले खाली बैठना ही पसन्द करते थे। परन्तु जयपुर के युवराज मणिभद्र ने विजयपाल पर हमला करने का बीड़ा उठाया। मणिभद्र का पिता पहिले विजयपाल से हार चुका था। उसने बचपन से ही अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग में अच्छी शिक्षा पाई थी। उसे व्यूह आदियों का भी ज्ञान था। वह युद्ध कला में प्रवीण हो गया था। उसकी अभिलाषा थी कि वह विजयपाल को हरा कर उसकी पुत्री जलजा से विवाह करे।

मणिभद्र अपनी सेना के साथ विदर्भ पर चढ़ाई करने के लिए आ रहा था; उस समय विजयपाल बीमार पलङ्ग पर पड़ा था। बुढ़ापे की वजह से राजबैद्यों द्वारा दिये गये औषधियों का भी उस पर खास प्रभाव न हो रहा था। बीमारी के साथ-साथ युद्ध के कारण उसका स्वास्थ्य और

सुरेशचन्द्र



भी गिर गया। स्वयं लड़ाई के मैदान में जाकर विजय पाने के लिए वह उस दशा में उठा। मन्त्री, और वैद्यों ने उसको उड़ाई के मैदान में जाने से तो रोक दिया; परन्तु उसके मन में एक प्रकार की विवशता घर कर गई। दिन-रात युद्ध की खबरें सुना करता। व्यूह को तोड़ने के लिए प्रति व्यूह की सलाह देकर रोज सैनिकों को यह मैदान में भेजा करता। फिर अपने प्रतिव्यूहों को असफल पा चिन्तित होता।

इस तरह कुछ दिन गुजर गये। युद्ध भूमि में विदर्भ के सैनिकों की पराजय होती जाती थी। महाराज की बीमारी भी बढ़ती जाती थी। सच्ची खबरें सुनाना राजा के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक जान वे झूठी-मूठी खबरें सुनाने लगे। कुछ भी हो, आखिर राज वैद्य ने कहा-"महाराज ६० क्षणों से अधिक न जी सकेंगे। मणिभद्र दो दिनों में पूर्ण विजयी होने को था। इस बीच महाराज को पराजय की खबर क्यों सुनाई जाय ? निष्कारण महाराज को क्यों कष्ट दिया जाय?"

"महाराज! अब शत्रु सेना में खलबली मच गई है।" महामन्त्री ने कहा। उस कमजोरी की हालत में भी राजा मुस्कुराया। एक आह छोड़ी और थोड़ी देर के लिए आँखें बन्द कर लीं।

परन्तु राजवैद्य और महामन्त्री के हिसाब गलती हुई। साठ क्षण गुजर गये। पर राजा अब भी जीवित था। और युद्ध भी अब खतम होने को था।

राजा ने आँखे खोल कर धीमे से युद्ध समाचार पूछे।

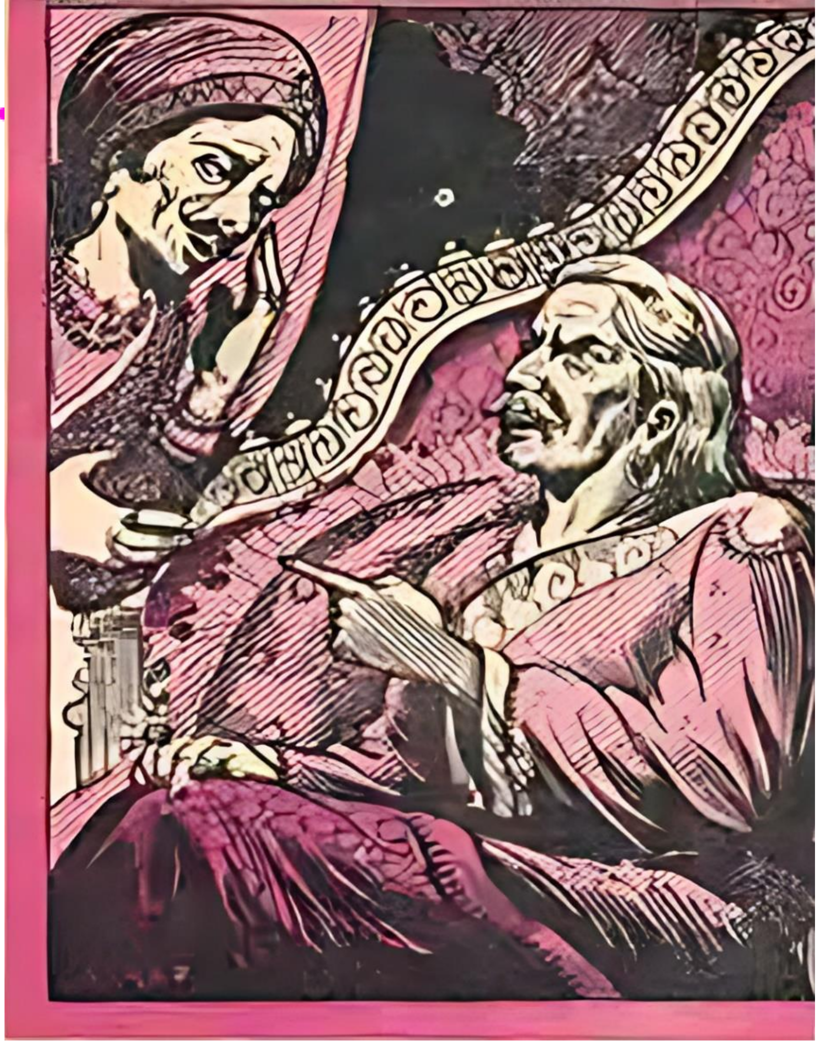
"महाराज ! अन्त में विजय लक्ष्मी हमें ही मिलेगी। शत्रु कभी भी अब सन्धि के लिये गिड़गिड़ा सकता है।" मन्त्री ने

कहा। वह सोच रहा था कि राजा पहले गुजर जाते हैं या शत्रु सेनायें पहले महल में प्रवेश करती हैं। महाराज के मर जाने के बाद चाहे कुछ भी गुबरे इसकी परवाह मन्त्री को न थी। परन्तु वह ही न हुआ। मणिभद्र के अपने दल बल के साथ महल में आने का कोलाहल सुन राजा ने आँखे खोल कर पूछा-"क्या, हम जीत गये हैं? यह शोर क्या है ?"

"महाराज, हमारी सेनायें विजय घोष के साथ युद्धभूमि से लौट रही हैं।" मन्त्री ने निवेदन किया।

"यह तो मुझे पहले ही मालूम था। मैं पराजित नहीं होऊँगा।" राजा ने यह कह कर फिर आँखे मूँद लीं।

थोड़ी देर बाद मणिभद्र ने महल और अन्तःपुर पर कब्जा कर लिया और दरबार का प्रबन्ध करवाया। विदर्भ के मन्त्रियों और सेनापतियों को दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी गई। जाने के सिवाय कोई चारा न था। महामन्त्री जब राजा की अंगुली से राजमुद्रा निकाल रहा था तब महाराज ने आँखे खोलकर पूछा-"क्या है यह ?"



"महाराज ! हम हारे हुए शत्रुओं से सन्धि करने जा रहे हैं, और सन्धि पत्र पर तो राजमुद्रा लगनी ही चाहिये।"

ऐसा लगा जैसे राजा में यकायक नई शक्ति आ गई हो। वह मन्त्री का सहारा लेकर बैठ गया और मन्त्री से कहा-"मैं स्वयं सभा में आऊँगा। सब प्रबन्ध करवाओ।"

महामन्त्री को ऐसा लगा जैसे उसकी अक्ल ही बिगड़ गई हो। उन्हे कुछ न सुझा।

वह जल्दी जल्दी दरबार की ओर गया। बहाँ मणिभद्र सिंहासन पर बैठा हुआ था और सन्धिपत्र लिखवा रहा था।

"महाराज ! एक निवेदन।" यह कहकर महामन्त्री ने मणिभद्र को सारी कि सारी घटना एक सिरे से सुना दी। "महाराज अब एक क्षण, नहीं तो ज्यादह से ज्यादह दो क्षण ही जी सकेंगे। उससे ज्यादा जीवित न रह सकेंगे। अगर आप उन्हें सच बताये बिना रह सकें तो मैं और विदर्भ की सारी जनता आपकी हमेशा के लिए कृतज्ञ रहेगी।" मणिभद्र पहले तो माना नहीं। जवान था ही। देखा जाय क्या मजा होता है, यह सोचकर बाद में मान गया।

उसी समय, सेवकों को पकड़कर महाराज अन्तःपुर से चलते हुआ आया। अपने सिंहासन पर बैठ गया। उसके चेहरे पर प्रसन्नता थी। बगल में हाथ जोड़े हुये मणिभद्र को भी देखा।

"बेटा! तुम अच्छे योद्धा हो। अच्छी व्यूह रचना जानते हो। क्यों कि विस्तरे पर से मैने स्वयं ही प्रतिव्यूह के बनाने की सलाह दी थी, इसलिए ही हम जीते हैं, नहीं तो तुम विजयी हुए होते। मुझ से हार जाना तेरे लिए कोई अगौरव की बात नहीं है। मैं तुमसे गौरवनीय सन्धि ही करना चाहता हूँ। मैं अपनी लड़की का तुमसे व्याह करता हूँ। हालाँकि तू हार गया है पर राज्य तेरा ही है।" महाराजा ने मुस्कराते हुए कहा।

मणिभद्र को पहले तो कुछ सुझा नहीं। परन्तु जलजा को सभा में बैठा देखकर उसने महाराज के शब्दों का विरोध न करना चाहा। दोनों का बड़े वैभव के साथ विवाह सम्पन्न हुआ।

कुछ महीनों बाद उन्हें एक लड़का भी पैदा हुआ। वृद्ध महाराज पोते से खेलता कूदता खुश रहता। पर अन्त तक उसको अपनी पराजय के बारे में न मालूम हुआ।





बहुत समय पहले ताप्ती नदी के किनारे एक गाँव था। उसमें वत्सल नाम का एक छोटा व्यापारी रहा करता था। यद्यपि देखने से वह बहुत रईस नही दिखाई देता था, परन्तु सावधानी से व्यापार करने के कारण उसने हजार अशर्फियाँ जमा कर ली थी।

एक बार वत्सल को व्यापार पर किसी दूरदेश को जाना पड़ा। जमा किये हुए अशर्फियों को साथ ले जाना अच्छा काम न था। इसलिए उसने उन हजार अशर्फियों को एक मर्तबान में दबाकर रखा, उनके ऊपर आमले रख दिए, मर्तबान पर ढकना रखकर कपड़े से बाँध दिया। और उस मर्तबान को वातापी नाम के बड़े व्यापारी के घर ले गया।

"वातापी जी! मैं कल व्यापार पर बाहर जा रहा हूँ। वापिस आने में तीन चार महीने लगेंगे। तब तक मेरे आमले के आचार वाले मर्तबान को अपने घर में हिफ़ाज़त से रख सकियेगा?" वत्सल ने सविनय पूछा।

वातापी ने मान लिया और वत्सल को अपने सामान वाले कमरे के एक कोने में जगह दिखाई। वत्सल ने स्वयं अपने हाथों वहाँ मर्तमान रखा और चला गया।

मगर बत्सल ने जितना अनुमान लगाया था उससे ज्यादा व्यापार और फायदा मिल गया। सोचा था कि दो-तीन महीने बाद अपने देश को वापिस चला जायेगा, परन्तु वहाँ कई वर्ष लग गये।

इस बीच वातापी वत्सल को भूल ही गया। एक बार जब वह घर साफ करवा रहा था तो सामान वाले कमरे के कोने में उसे एक बन्द मर्तबान दिखाई दिया। "वत्सल का क्या हुआ? उसको गये हुए सात वर्ष



हो गये। क्या वह अब भी जिन्दा होगा? बिचारे ने अपना मर्तबान यहाँ बडी हिफाजत से रखा था। देखें इसमें है क्या ?" वातापी ने मर्तबान का ढकना खोला। उसमें सूखे हुए आमले थे।

जब उसने ऊपर के आमले हटा दिये तो नीची रखी हुई अशर्फियाँ चमकने लगीं। साथ-साथ वातापी के दिमाग में भी झट एक ख्याल चमका। उसका ख्याल यह था.... वत्सल शायद मर ही गया होगा; वापिस नहीं आयेगा अगर आया भी तो उसके पास गवाही क्या है उसने मेरे पास अशर्फियाँ रखवाई थी।

वत्सल ने कहा तो था कि मर्तबान में सिर्फ आमले ही थे। मेरी जिम्मेवारी तो सिर्फ इतनी है कि मैं आमलों को वापिस कर दूँ।

इस तरह सोच साच कर, वातापी ने आस पास किसी को न पा मर्तबान से हज़ार अशर्फी निकाल कर अलग रख दीं। फिर मर्तबान में कहीं से आमले लाकर भर दिये और उसे बन्द कर दिया। जहाँ वह पहले जैसे रखा था वहाँ वैसे ही रख दिया।

इसके थोड़े दिनों बाद ही वत्सल वापिस आ गया। वातापी के पास जाकर अपना मर्तबान घर ले आया। लाख देखने पर भी उसे आमले ही दिखाई दिय; अशर्फियों का नामो निशान न था। वत्सल गुस्से से खौल उठा। उसने वातापी से पूछा-"मैंने तो तुझे भला मानस समझा था और तूने मेरी अशर्फियों हड़प ली। यह क्या बात है ?"

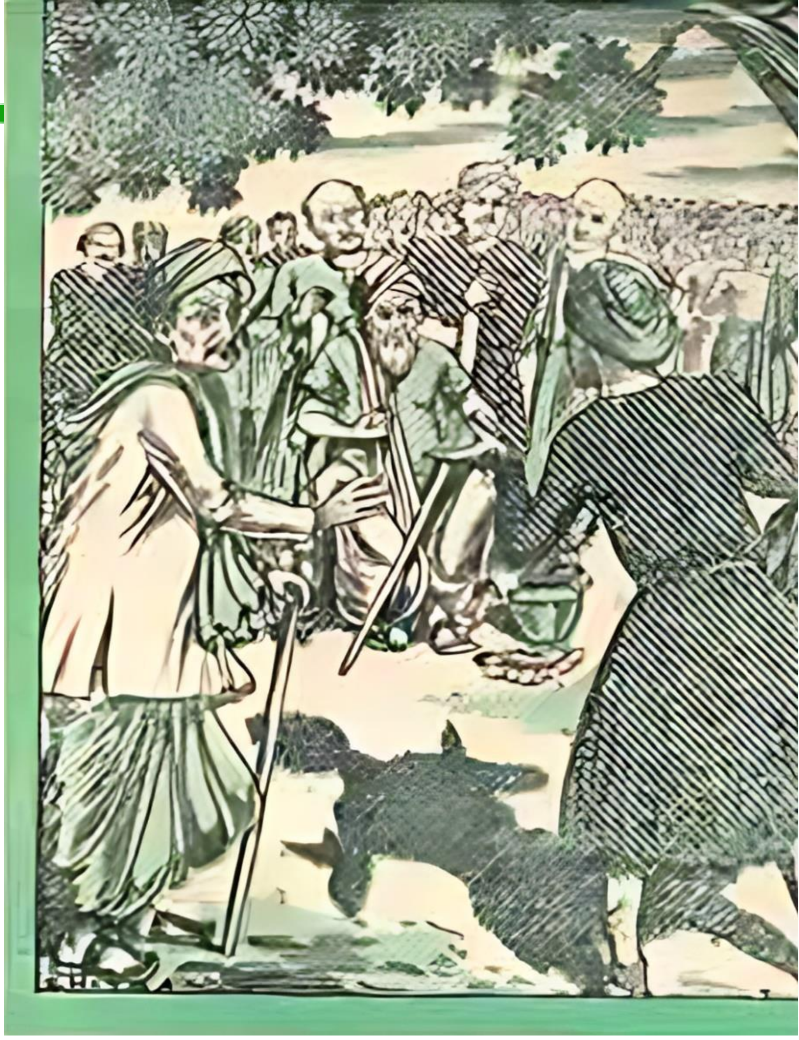
"क्या तूने अपना मर्तबान मेरे घर में इसलिए रखा था ताकि तू मुझ पर चोरी का इल्जाम लगा सके? तूने अपने आप ही मर्तबान रखा था और अपने हाथों ले भी गया। आमलों के मर्तबान में भला अशर्फियों का क्या काम ?" वातापी ने गुस्से का अभिनय करते हुए कहा।

मामला पञ्चायतदार के सामने पेश हुआ। पञ्चायतदार ने उन दोनों को बुला भेजा। वत्सल और वातापी हाजिर हुए और इस अजीब मुकादमा को देखने के लिए सारा गाँव भी वहाँ जमा हो गया।

वत्सल ने पञ्चायतदार से निवेदन किया कि सात साल पहिले एक मर्तबान में हजार अशर्फियाँ रख कर और उन पर आमले रख वह उसे वातापी के घर रख गया था। आज सवेरे जब उसने अपना मर्तबान खोला तो उसमें से अशर्फियों गायब हो गई थीं और आमले ही आमले भरे हुए थे। वातापी ने ही उन हजार अशर्फियों को लिया है और वे उसी के पास हैं।

वातापी ने कहा कि उसने मर्तबान छुआ तक न था। वत्सल खुद उस मर्तबान को उसके घर रख गया और स्वयं ही उसे उठा ले गया था। वत्सल मुझ पर झूठा अभियोग लगाकर मेरा रुपया हथियाना चाहता है। उसका कहना एकदम झूठ है।

पञ्चायतदार ने बत्सल से पूछा-"क्यों भाई, क्या इस बात की कोई गवाही है कि तुमने इस मर्तबान में अशर्फियाँ रखी थीं?"



वत्सल ने कहा-"सिवाय मेरे और वातापी की अन्तरात्मा के इसकी कोई गवाही नहीं है।"

"उस हालत में तेरी बात पर कैसे विश्वास किया जाय? क्या तूने अपना मर्तबान ठीक तरह देखा था कि नहीं ? शायद अशर्फियाँ उसी में ही रह गई हों ?" पञ्चायतदार ने पूछा।

"देखा था। उसमें आमलों के सिवाय कुछ नहीं है।" वत्सल ने घबराते हुए कहा।

"अच्छा ! तो जाओ जरा अपना मर्तबान तो उठा लाओ। सन्देह भला क्यों

बना रहे, उसे दूर ही जो कर लिया जाय।" पञ्चायतदार ने कहा।

बत्सल का अब यह विश्वास जाता रहा कि फैसला उसकी तरफ होगा। फिर भी पञ्चायतदार की इच्छा के अनुसार वह घर गया, और मर्तबान ले आया, उसको सबके सामने खाली करते हुए दुःख के साथ कहा-"आप लोग ही देखिये। इसमें एक अशर्फी भी नहीं है। सब इसने चुरा ली हैं।"

परन्तु पञ्चायतदार वत्सल की बातें नहीं सुन रहा था। उसने दो तीन आमले उठाये, उन्हें चखकर देखा और कहा-"वाह, आश्चर्य है, क्या खूब।" सब उसकी ओर अचम्भे में देखने लगे।

"आप सब लोग एक एक आमला चखकर तो देखिये।" पञ्चायतदार ने कहा। न जाने क्यों, सब ने एक एक आमला लेकर चखा भी। पञ्चायतदार ने वत्सल से पूछा-"देखो! सात वर्ष पहिले तुम ने आमले मर्तबान में रखे थे, ऐसा लगता है जैसे कि वे कल ही तोड़े गये हों। कहाँ तुझे ऐसे अनमोल आमले मिल गये थे?"

बातपी की हवाईयाँ उड़ने लगीं। बाकी सब लोगो ने पञ्चायतदार से कहा-"ये आमले तो इसी साल तोड़े गये हैं। सात साल पहले के नहीं हैं।"

पञ्चायतदार ने वातापी की ओर मुड़कर पूछा-"तू तो कह रहा है कि तूने इस मर्तबान को छुआ तक नहीं हैं। फिर इसमें इस साल के आमले कैसे आये ? शपथ लेकर झूठ बोलने के अपराध में तुझे फाँसी की सजा दूँ या तू वत्सल की अशर्फियाँ वापिस दे देगा?"

तुरन्त वातापी ने अपनी की हुई गलती को मान गया और वत्सल को उसकी हजार अशर्फियाँ वापिस कर दीं। सब पञ्चायतदार की अक्लमन्दी की तारीफ करने लगे।





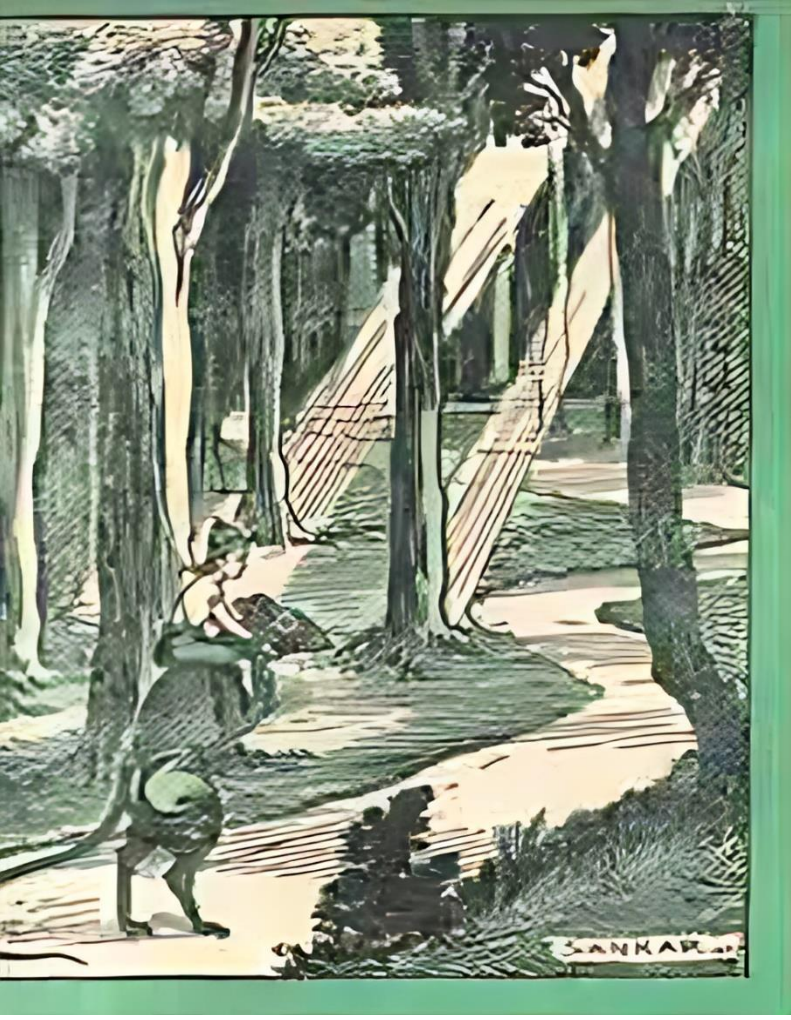
परंतप

देवलोक में परन्तप नाम का एक गन्धर्व रहता था। वह बहुत ही नाटा था, उसके छोटे छोटे पैर थे। इस वजह से वह जल्दी जल्दी नहीं चल पाता था। परन्तु वह बहुत ही बुद्धिमान था। यन्त्रों के बनाने में उसे मात करने वाला कहीं भी कोई न था।

परन्तप ने अपनी प्रतिभा से एक छोटा सा सुन्दर विमान तैयार किया। जहाँ कहीं भी उसे जाना होता, उसी विमान पर ही जाया करता। इस वजह से उसे पैदल जाने की नौबत नहीं आती थी।

एक दिन परन्तप को सूझा कि भूलोक का भ्रमण किया जाय। अपने विमान में वह बैठ कर चल पड़ा। जाते-जाते, बहुत दूर जाने के बाद उसे एक मैदान दिखाई दिया। वहाँ विमान ने चक्कर खाया और गिर गिर करता एक झोपड़ी पर जा गिरा। वह झोपड़ी चूहे महाशय की थी। विमान के गिर पड़ने से वह झोपड़ी भी गिर गई। चूहे महाशय ने गुस्से में कहा-"हटाओ इस विमान को यहाँ से। तू और तेरा विमान ? मेरी झोपड़ी ही गिरा दी।" परन्तप ने झोपड़ी पर गिरे विमान में कहा- "अरे भाई, क्या का क्या हो गया! जरा देखूँ तो कहीं मेरा विमान आगे की ओर तो झुक नहीं गया है।" विमान को चारों तरफ से परन्तप देखने लगा।

आखिर, परन्तप ने मुस्कराते हुये कहा-"चूहे महाशय ! न जाने मैने क्या समझा था। असल बात यह है कि मैने इसमें 'जीवरस' डाला ही नहीं था। मैं आज इसे कैसे भूल गया मुझे ही नहीं मालूम हो रहा है।" "देवता महाशय ! यह 'जीवरस' क्या है ?



सकता हूँ। इसके अलावा, जब से मैंने यह विमान तैयार किया है तब से मेरी चलने की आदत भी कम हो गई है।" परन्तप ने कहा। मगर चूहा चुप ही रहा। परन्तप सिर खुजाता हुआ सोचने लगा कि क्या किया जाय। चूहे महाशय भी अपना दिमाग कुरेदने लगे। आखिर चूहे महाशय ने कहा-"देवता महाशय ! तुम मेरे ऊपर चढ़ बैठो। मैं तुम से अधिक ताकतवर हूँ। तेजी से भाग भी सकता हूँ। आओ चलो चलें विन्ध्याचल के जङ्गलों की ओर....!"

क्या उसके बगैर यह विमान नहीं चल सकता है ?" चूहे महाशय ने बड़ी उत्कण्ठा से पूछा।

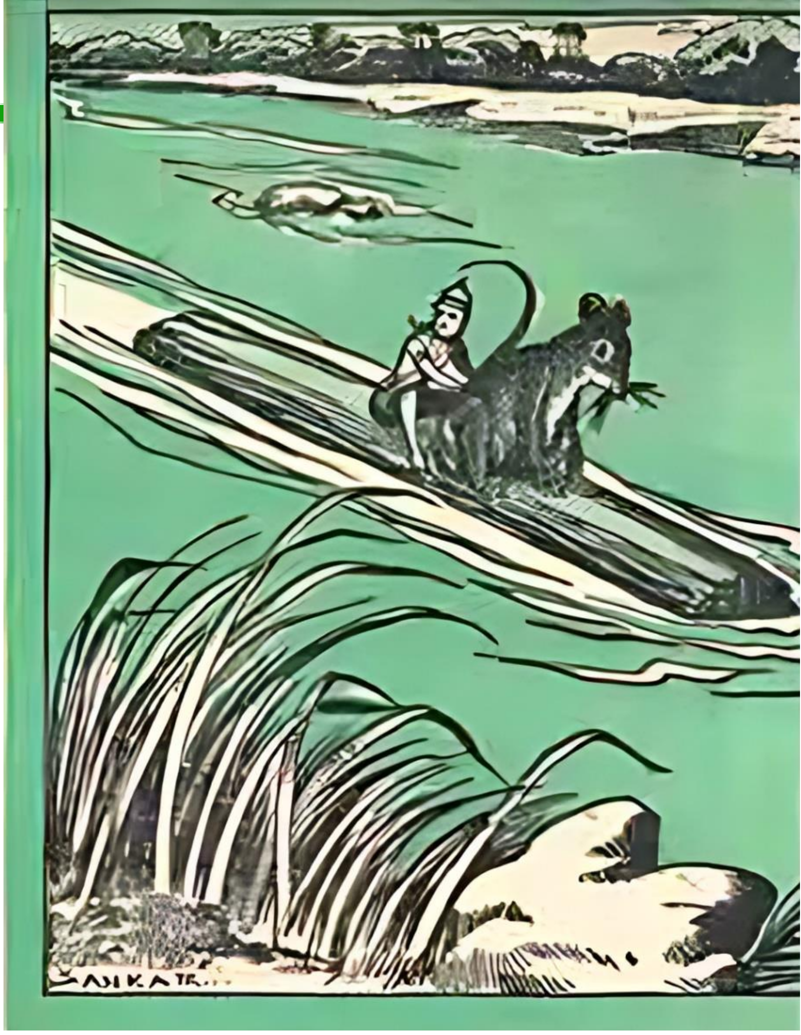
"हिलेगा तक नहीं। अब यही आफत तो आ पड़ी है। वह जीवरस सिवाय देव-लोक के कहीं भी नहीं मिलता है। सुना है कि यहाँ उसके पेड़ विन्ध्याचल के घने जङ्गलों में ही मिलते हैं और कहीं नहीं। उनके फलों से रस निकाल कर विमान में डालने से ही वह चलेगा। नहीं तो वह हिलेगा भी नहीं। अगर में वहाँ जाना भी चाहूँ तो मैं अपने इन छोटे-छोटे पैरों से जल्दी-जल्दी नहीं चल

जीवरस को लाने के लिए परन्तप ने एक बर्तन लिया और चूहे महाशय के कन्धों पर चढ़ गया। दोनों विन्ध्याचल के लिए रवाना हुए। पहाड़, पर्वत, जङ्गल और मैदानों को पार करते हुए कई योजनों का रास्ता उन्होंने तय किया। जाते-जाते रास्ते में उनको एक नदी दिखाई पड़ी। चूहे महाशय चेहरा लम्बा कर, खिन्न हो बैठ गये। सोचने लगे- "देवता महाशय ! अब क्या किया जाय ? मुझे तो तैरना नहीं आता है। यह नदी कैसे पार की जाय ?"

तब परन्तप चूहे महाशय के कन्धों पर से उतरा। सिर खुजला कर नदी की तरफ देखा; इधर-उधर देखा। कुछ देर बाद परन्तप ने मुस्कुराते हुए कहा-"घबराओ मत चूहे महाशय ! अगर तैरना नहीं आता है तो क्या हुआ? वह जो पेड़ का तना दीख रहा है, उसे हम पानी में डाल कर नदी के पार जा सकते हैं।" परन्तप तना खींच लाया। चूहे महाशय उस पर बैठ गये। दोनों मिल कर नदी के पार चले गये। यह सोच कर कि वापिस जाने के लिए इस तने का जरूरत पड़ेगी, उन्होंने उसे किनारे पर खींच लिया।

उसके बाद परन्तप चूहे महाशय के कन्धों पर चढ़ बैठे। दोनों ने फिर अपना सफर जारी किया। कितने ही जङ्गल, और कितने ही मैदान, उन्होंने फिर पार किये। थोडी देर बाद चूहे महाशय भागना छोड़ कर धीमे-धीमे चलने लगे। फिर वह एकदम रुक गये और कहने लगे- "देवता महाशय ! अब मैं चल नहीं सकता। जहाँ देखो वहीं काँटे कङ्कड़ हैं। अगर और चला तो पैरों पर छाले पड़ जायेंगे। आओ, वापिस चले।"

परन्तप झट चूहे के कन्धों पर से नीचे कूद पड़ा। एक बार आँखें



झपझपाई "चूहे महाशय! बस, इतने से ही डर गये? अब तुम मेरी चप्पल पहन लो, काँटे नहीं चुभेंगे।" यह कहते हुये उसने अपनी चप्पल निकाल कर चूहे के पिछले पैरों में पहना दी, और बकसुवे कस दिये। यह देख चूहा मुस्करा दिया। फिर खुशी खुशी परन्तप को कन्धों पर चढ़ा कर रास्ते पर चल दिया।

दोनों चलते-चलते एक जङ्गल में पहुँचे । परन्तप ने तब कहा-"चूहे महाशय ! जरा यहाँ ठहरो। हम विन्ध्याचल में आ गये हैं। तुम जरा आराम लो और मैं इस पहाड़ पर

चढ़ कर बर्तन में जीवरस ले आऊँगा। तब वापिस हम जा सकेंगे।"

चूहे महाशय ने कहा-"बहुत अच्छा।" बैठते ही चूहे की आँखें नींद से बन्द हो गई। परन्तप पहाड़ पर गया, बर्तन भर जीवरस ले आया। जङ्गल बापिस आकर उसने चूहे को उठाया।

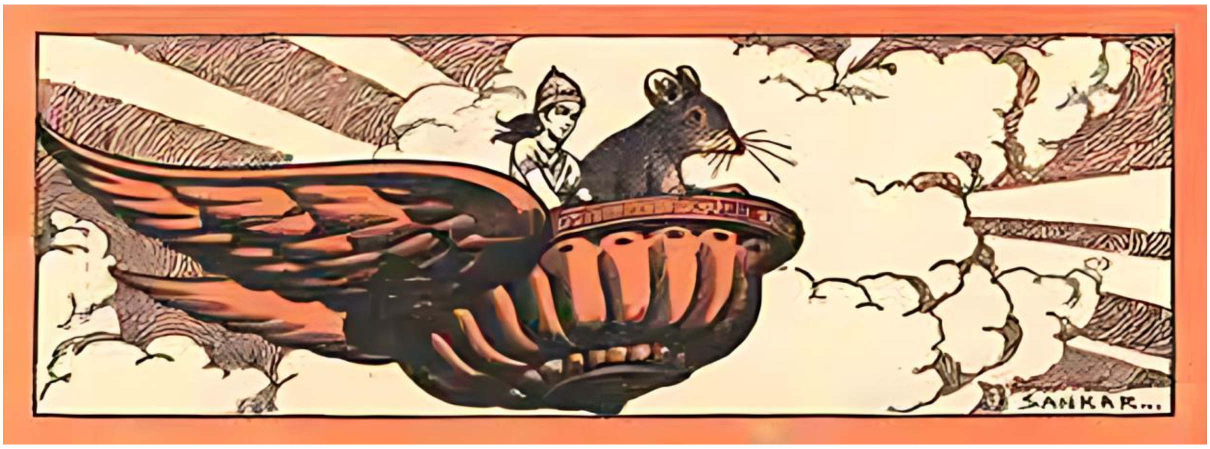
चूहे महाशय अङ्गड़ाई लेते हुये और आँखें मलते हुये उठे। दो तीन बार आँखें झपकाई और मुस्कराते हुये कहा-"देवता महाशय ! तो क्या चले ? जरा यह जीवरस का बर्तन सम्भाल कर रखना।"

जीवरस वाले बर्तन को परन्तप ने मजबूती से पकड़ लिया। दोनों फिर वापिस नले। झाड़, काँटे कङ्कड़, जङ्गल, पहाड़, पर्वत और मैदानों को पार करते हुये, जैसे तैसे दोनों चूहे महाशय की झोपड़ी तक पहुँच गये।

पहुँचने पर उन्होने देखा कि परन्तप का विमान झोपड़ी पर पहिले की तरह ही पड़ा हुआ था। परन्तप झोपड़ी पर चढ़ा विमान में जीवरस डाला। फिर विमान बुर, बुर, बुर शब्द करने लगा। परन्तप विमान में चढ़ कर बैठ गया। "अच्छा, चूहे महाशय ! तो मुझे इजाजत दो।" चूहे के आँखों में पानी आ गया।

परन्तप चूहे को रोता न देख सका। "चूहे महाशय, तुम क्यों अफसोस करते हो? झोपड़ी तो गिर ही गई है। आओ मेरे साथ चले चलो। आओ, विमान पर चढ़ो।"

तुरन्त चूहे के आँखों से आँसू आने चन्द हो गये। हँसता हँसता, झट विमान में जा कूदा। 'देवता महाशय' कहता कहता परन्तप की बगल में जा बैठा। वह विमान परन्तप और चूहे महाशय को गन्धर्व लोक ले गया।



CHANDAMAMA (Hindi) AUGUST 1964 Regd. No M. 8462



रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र — २